सतनाम आन्दोलन एक क्रान्तिपथ

यह उल्लेख मिलता है कि 'सतनाम पंथ का इतिहास एवं इसके सांस्कृतिक उपादान अपनी उत्पत्ति काल से ही सुधारवादी, जनतंत्रवादी और राष्ट्रवादी रहा है।' इस पर विचार करने के पहले हम क्रान्ति और सुधार को समझें। वास्तव में सुधार की गुन्जाइश वहॉ होता है जहॉ थोड़ी बहुत खराबी हो। जैसे मूर्तिकार को ही लें यदि मूर्ति थोड़ी बहुत खराब हो गयी है या बिगड़ गयी है वहॉ सुधार की जा सकती है। लेकिन यदि मिट्टी ही खराब हो और जगह जगह दरार पड़ रहे हों तो उसमें सुधार की गुन्जाइश नही रह जाती। जहॉ सुधार की गुन्जाइश खतम हो जाती है वहॉ तो मिट्टी को बदल कर ही सही मूर्ति बनायी जा सकती है। वास्तव में सतनाम आन्दोलन जनतंत्रवादी और राष्ट्रवादी जरूर रहा है, लेकिन सुधारवादी नही बल्कि हमेशा क्रान्तिकारी रहा है। जब - जब क्रान्ति का बिगुल बजता है सुधारवादी ताकते सामने आकर हमेशा क्रान्तिपथ को रोकने या मोड़ने की कोशिस करती है। ये सुधारवादी ताकते अकसर शोषक वर्ग से होता है। क्रान्ति का अर्थ अमूल परिवर्तन होता है। यह हमेशा शोषितों द्वारा शोषकों के विरूद्ध एक समुचित संघर्ष होता है। इससे उन शोषकों का समूल नाश होने का खतरा या भय बना रहता है। आखिर सुधारवाद की जरूरत किसको होगी। यह केवल शोषक वर्ग की जरूरत है। इन्होने सब चीजों पर कब्जा कर रखा है। यहॉ तक हमारे सासों पर भी इनका कब्जा है। वह परिवर्तन क्यों चाहेगा। अतः शोषक वर्ग ही सुधार की बातें करता है। अपने कब्जा से कुछ हिस्सा या टुकड़ा देने को तैयार हो जाता है ताकि क्रान्तिपथ थम जाय। बाद में शोषक वर्ग क्रान्तिपथ को पुनः मोड़कर अपने हित में करने लगता है। शोषक वर्ग समस्त मानवीय अधिकारों पर कब्जा जमाये रहता है। अतः सुधारवाद मानवीय अधिकारों का वास्तव में एक समझौता है। यह शोषक और शोषित वर्ग के बीच होता है। इसमें शोषित वर्ग अकसर शोषकों के आगे दोनों हाथ फैलाये उनसे कुछ न कुछ मांगते रहता है। इस तरह सुधारवाद में शाषितों का दोनों हाथ फैला रहता है और शोषकों अपना मुठ्ठी बन्द रखता है।

ः भारत में सतनाम आन्दोलन का उद्भव ः

सतनाम आन्दोलन का उद्गार ही एक क्रान्ति के रूप में शुरू हुआ है। महामानव बुद्ध का सत्य और अहिंसा का खोज अपने आप में एक महान क्रान्तिकारी खोज रहा है । वे शाक्यवंश के राज घराने में पैदा हुए। उस समय देश छोटे छोटे सूबों में बंटा हुआ था। शाक्यों और लिच्छवियों में अकसर द्वन्द होते रहता था। लिच्छवी अपने को क्षत्रिय मानते थे। लेकिन शाक्यों को क्षत्रिय नहीं मानते थे। सत्ता आर्य पुत्रों के पास था। वर्ण भेद अपने चरम सीमा पर था। वेदोक्त ब्राह्मण अपने आपको सर्वोच्च मानने लगे थे। शाक्य वंश के लोग तब खेती का काम करते थे। आज भी वे लोग साग- सब्जी, फल-फूल, पेंड़-पौधे उगाते हैं। वर्ण भेद के अधार पर ये आज भी शूद्र माने जाते हैं। लेकिन तब शूद्रों के राजा वनने में कोई प्रतिवन्ध न था और शूद्र भी राजा वन सकता था । बुद्ध ने देखा कि वर्ण भेद के अलावा स्वर्ग, नरक, ईश्वर, आत्मा और पुनर्जन्म जैसे वेद सम्मत रूढ़िवाद एवं अन्धविश्वास के नाम पर शोषण बदस्तूर जारी था। सामान्य जनता पिसे जा रही थी और लोग हर तरह से दुखी थे। राज घराने

में पैदा होने के बावजूद उन्हें शाक्य होने का आभास था। ज्ञान प्राप्ति के बाद सबसे पहले उन्होंने जन्म के आधार पर ब्राह्मण होने को ललकारा।

न जच्चा वसलो होदि न जच्चा होदि ब्राह्मणों।
कम्मूना बसलो होदि कम्मूनो होदि ब्राह्मणों।।

अर्थात "जन्म से कोई ब्राह्मण नहीं होता और न ही कोई शूद्र होता है कर्म से ही ब्राह्मण और शूद्र होता है।" इससे पहले गुरूकुल प्रथा थी। शिक्षा के आधार सर्वोपरि था। ब्राह्मणों ने चालाकी से जन्म के आधार पर बदलने की कोशिस की। बुद्ध ने इसका विरोध किया । उन्होंने ईश्वर, आत्मा और पुनर्जन्म के सिद्धान्त को पूर्णतः नकारा। इससे लोगों में स्वर्ग-नरक का भय लगभग समाप्त सा हो गया। उन्होने अतिवाद के बदले मध्यम मार्ग को जीवन का उत्तम मार्ग बताया। फलस्वरूप ब्राह्मणवाद बुरी तरह चरमरा गया। इससे न केवल भारत भूमि बल्कि पूरे विश्व में जबरदस्त नवीन वैज्ञानिक क्रान्ति का उद्‌भव हुआ। राजसत्ता के मद में हिंसा के पथ पर बड़े तेज रफ्तार से दौड़ने वाले सम्राट अशोक को अंततःअहिंसा के पथ पर मुड़ना पड़ा। वह राज सत्ता त्याग कर "बुद्धं शरणं गच्छामि" हो चला। यहॉ तक कि अपने बेटा- बेटी को राज सुख भोगने देने के बजाय, उन्हें भिक्षु बनाकर इस महान बुद्धिवादी विचारधारा को फैलाने के लिए देश विदेश में भेजा। इसे कहते है परिवर्तन की धारा जिसके सम्पर्क में आने वाला हर व्यक्ति चाहे वह सत्ता के उच्च आसन पर क्यों न बैठा हो अपने आप को अमूल परिवर्तन करने पर बाध्य हो जाता है। यही वह क्रान्ति और शान्तिपथ है।

सन्त कबीर का सतनाम आन्दोलन ः

दूसरी बार जब सन्त कबीर ने सतनाम क्रान्ति का उद्‌घोष किया। उस समय सत्ता मुगल शासकों के पास था। वहीं भारतीय संस्कृति रंग व वर्ण भेद से भी घटिया, जातिवाद की मनहूस छाया से ग्रस्त था। रूढ़िवाद और अन्धविश्वास ही आम जनता के शोषण का मुख्य कारण था। सन्त कबीर ने ऐसे वक्त में पुरोहितवाद और मौलवीवाद, दोनों को डटकर फटकारा। समाज में व्याप्त रूढ़िवादी व्यवस्था को नहीं मानने के लिए आम जनता को जमकर आन्दोलित किया।

अरे इन दोऊ राह न पाई
हिन्दू अपनी करै बड़ाई गागर छुवन न देई
X X X X X
मुसलमान के पीर औलिया मुरगी मुरगा खाई

उनका आन्दोलन कोई सुधारवादी नहीं बल्कि जबरदस्त क्रान्तिकारी व परिवर्तनवादी था। वे चाहते थे कि ऐसी मानवतावादी समाज व्यवस्था स्थापित हो, जो जाति- पांति से दूर, भाईचारा पर आधारित समतामूलक हो। जहॉ हर व्यक्ति का मान सम्मान हो। शोषण एवं अन्याय अत्याचार का कहीं कोई स्थान न हो। उन्हें पुरोहितों के मुफ्तखोरी से सक्त नफरत था। वे इन्हें अमरबेल की तरह परजीवी प्राणी समझते थे जो खुद तो पनपता है, पर जिसके सहारे फलता फूलता है उसे ही नष्ट कर देता है।

उन्होने सतनाम को जीवन का सार कहा। सन्त रविदास भी इसी काल के है। दोनों रामानन्द जी के शिष्य थे। इन्होंने समाज व्यवस्था को सहज रूप में समझने का रास्ता दिखाया।

गुरूनानक जी का सतनाम आन्दोलन और सिख पन्थ ः

सन्त कबीर, बुद्ध के बाद सतनाम के अगले पुरोधा गुरूनानक जी हुए है। गुरूनानक जी की अगुआई में पंजाब में सिख पन्थ का अविष्कार हुआ, जो अपने आप में एक महान क्रान्ति है। गुरूनानक जी सन्त कबीर और सन्त रविदास जी को अपना आदर्श मानते थे। इनके वाणियों का संकलन गुरूग्रन्थ साहेब में मिलता है। वास्तव में क्रान्तिकारी विचारधारा में वो शक्ति होती है कि उसके सम्पर्क आने वाला हर व्यक्ति अपने संकीर्ण पथ को छोड़कर, मानवता के पथ पर अपने आप चलने लगता है। तीसरे गुरू अमरदास जी ने जब मानवता आधारित समतामूलक जाति विहीन समाज की स्थापना करने का संकल्प लिया, तो उनसे मिलने के लिए अकबर बादशाह को भी लंगर में बैठकर खाना पड़ा था। सिख पन्थ के सभी दस गुरूओं ने हिन्दुओं के रूढ़िवाद और अन्धविश्वास को समाप्त करने के लिए एक से बढ़कर एक अनोखा उदाहरण पेश किया। मान और सम्मान की रक्षा एवं अपने अधिकार के लिए जन चेतना पैदा कर मुगल शासकों एवं हिन्दु शोषको दोनों के विरूद्ध संघर्ष का बिगुल बजाया, जो अपने आप में क्रान्ति का प्रतीक है।

सन्त कबीर और गुरूनानक जी का आन्दोलन सत्ता में बैठे तत्कालिन मुगल शासकों के अन्याय अत्याचर एवं हिन्दुओं के रूढ़िवाद व पुरोहितवाद के कारण बहुसंख्यक वर्ग पर हो रहे शोषण, दोनों शोषकों के खिलाफ, ‘सतनाम चेतना पर आधरित नवीन विचारधारा रूपी दो धारी तलवार के माध्यम से’, संघर्ष था। शोषको के विरूद्ध इस नई क्रान्ति ने दोनों से हट कर, एक बिल्कुल नया पन्थ “सिख पन्थ” की उत्पत्ति कर डाला। सिख पन्थ आज हिन्दु और मुसलमान दोनों से बिल्कुल भिन्न है, जहॉ केवल ज्ञान की पूजा होती है।

सतनाम पन्थ का एक और नया उद्‌गार, जो छत्तीसगढ़ में हुआ। उसकी भूमिका इन्ही आन्दोलनों से मिलता जुलता नजर आता है। अतः यहॉ पर उल्लेख करना उचित लगता है। दाराशिकोह जो औरंगजेब का बड़ा भाई था, मुगल सिंहासन का असली हकदार था। पिता के मृत्यु की खबर चलते ही औरंगजेब ने उसे पंजाब के सामूगढ़ में ही **29** मई **1658** को परास्त कर बन्दी बना लिया। दाराशिकोह बड़ा दयालु स्वभाव का था। मुस्लिम सूफी मियॉ मीर जो सिक्खों की विचारधारा और सिद्धान्त का जानकार था, उससे काफी प्रभावित था। कहा जाता है कि जब औरंगजेब के सिपाही दाराशिकोह की ओर बढ़ रहे थे, तब गुरू हरराय ने दाराशिकोह की मदद में अपनी फौज भेज कर औरंगजेब की सेना को रोकने की कोशिस भी की थी।

इसी तरह पंजाब के नारनौल क्षेत्र (वर्तमान में हरियाणा) में सतनामी विद्रोह की बात कही जाती है। इसके प्रणेता बिजासर गांव के सन्त बीरभान को बताया जाता है। इनका संबंध छत्तीसगढ़ के सतनामियों से बताया जाता है। “सतनामी विद्रोह में भी सतनामियों द्वारा ‘दाराशिकोह’ की मदद की

बात कही गई है। सतनामियों ने दाराशिकोह को बादशाह बनाने के लिए औरंगजेब के खिलाफ संघर्ष किया था। जिसके चलते औरंगजेब सतनामियों से नाराज हो गया।" सन् **1672** सतनामी विद्रोह का दूसरा मुख्य कारण औरंगजेब द्वारा लगाया गया जजिया कर था, जिसके विरोध में सतनामी आन्दोलन हुआ था।

आखिर दाराशिकोह को मदद करने वाले ये सतनामी कौन थे। ये उसी पंजाब क्षेत्र में जुर्म और ज्यादतियों के विरूद्ध लगातार दो साल तक मुगल शाहनशाह औरंगजेब से लड़ते रहे। लेकिन सतनामियों का यह युद्ध भले ही निर्णायक मोड़ नहीं ले पाया पर औरंगजेब की शसक्त सेना से परास्त होने के बाद में छत्तीसगढ़ की ओर जा बसे। फिर भी इतिहास में अपना छाप छोड़े बगैर नहीं रहा। सतनामी विद्रोह पंजाब नारनौल से लेकर मथुरा तक पूरे उत्तर भारत में हुई है। सिखों का आन्दोलन भी औरंगजेब के ईर्द गिर्द नजर आता है।

कहीं ये सन् **1658** में गुरू हरराय द्वारा दाराशिकोह की मदद में भेजे फौज, जो सतनाम को माननेवाले सिक्ख समुदाय के ही एक अंग तो नहीं थे ? क्यांकि तत्कालिन उत्तर भारत में सतनाम का बिगुल बजाने वाले सन्त कबीर के बाद गुरूनानकदेव ही थे। तब सतनाम शब्द प्रचलित हो चुका था। सन्त कबीर की मृत्यु सन् **1518** में मगहर में हुई। तब गुरूनानक जी का उम्र **49** वर्ष के लगभग था। सन् **1672** में सतनामी विद्रोह की बात लिखी गई है। ठीक तीन साल बाद सन् **1675** में औरंगजेब ने गुरूतेगबहादुर का सिर कटवाया था। ये सारी घटनायें सतनाम आन्दोलन के समकालीन नजर आती है। मंहगूदास जी के परदादा और दुकालुदास जी के पिता का नाम भी मेदनीराय था, जो गुरू हरराय एवं गुरू गोबिन्दराय के नाम से मिलता जुलता है। मेदनीराय व उनके कुछ साथी औरंगजेब से लम्बी लड़ाई के बाद छत्तीसगढ़ की ओर जा बसे। बाद में सन् **1756** में गुरू घांसीदास के पैदा होने के बाद, उन्होंने कबीर और गुरूनानक की तरह ही छत्तीसगढ़ मे सतनाम आन्दोलन का सूत्रपात किया। उनके वाणियों में काफी समानता नजर आती है। पता चला है कि मथुरा, आगरा से लेकर मेरठ और बाराबंकी के आस पास अभी भी कुछ लोग अपने को सतनामी कहते हैं। लगभग हर गांव में दो चार घर सतनामी मिल जायेंगे। वे शाकाहारी प्रवृत्ति के बताये जाते हैं।

गुरू घांसीदास का सतनाम आन्दोलन ः

छत्तीसगढ़ में सद्गुरू घांसीदास जी का सतनाम आन्दोलन वास्तव में सामाजिक एवं धार्मिक कान्ति ही नहीं बल्कि एक बहुआयामी आन्दोलन रहा है। यह सामन्तवाद, साम्राज्यवाद, एकाधिकार, जातिवाद, रूढ़िवाद, धर्मान्धता एवं कर्मकाण्ड के विरूद्ध मानवतावादी, समतामूलक, जनतंत्रवादी आन्दोलन था। यह सतनाम आन्दोलन जो अपने मानवीय अधिकार के प्रति चेतना मूलक सन्देश था, वास्तव में पुरोहितवाद के खिलाफ एक समझौता विहीन संघर्ष था। सतनाम बुद्धि और विवेक परस्त दर्श न है, जिसमें रूढ़िवादी धार्मिक अन्धविश्वासों, वेद निहित कर्मकाण्डों, जातिवाद और समाज के विशिष्ट वर्ग के एकांगी विकास, के विरूद्ध जन मानस को आन्दोलित करने का समुचित ज्ञान है। पुरोहितवाद और सामन्तवाद के बने ढांचे को ध्वस्त कर लोकतांत्रिक सोच एवं बहुमुखी सर्वांगीण विकास को आगे

बढ़ाना सतानाम आन्दोलन का मुख्य लक्ष्य रहा है। यहॉ उल्लेख करना उचित होगा कि गुरू घांसीदास का आन्दोलन न तो सुधारवादी था और न ही भक्तिपथ का समर्थक था। उनका आन्दोलन मानवीय अधिकारों के अनुरूप समता, स्वतंत्रता, बन्धुत्व और न्याय का परिपोषक रहा है, जो आमूल परिवर्तन अर्थात सम्पूर्ण क्रान्ति का द्योतक है। एक राष्ट्रव्यापी आन्दोलन रहा है।

विचारधारा ही परिवर्तन की दिशा निर्धारित करती है। सतनाम अपने आप में एक क्रान्तिकारी शब्द है। 'आप कितना आगे बढ़े है वह उतना महत्व नहीं, महत्व इस बात का है कि आप किस **दिशा** में आगे बढ़े है।' जहॉ जहॉ सतनाम का पदार्पण हुआ वहॉ वहॉ क्रान्ति का बिगुल बजा है। सतनाम में वह शक्ति है जो 'धरती पर रहते हुए परलोक का सपना देखने वालों को जमीन की सच्चाई पर खींच लाती है।' इस लोक में रहते हुए सत्य मार्ग पर चलना अपने आप में एक चमत्कार है। यह शोषण, अन्याय, अत्याचार, रूढ़ीवादी, अन्धविश्वास के बदले लौकिकता एवं व्यवहारिकता पर आधारित मानवतावादी समतामूलक पथ है। यही लौकिक एवं व्यवहारिक सत्य है इसके लिए अलग से चमत्कारी होना कोई आवश्यक नहीं है। वास्तव में अलौकिक अथवा चमत्कारिक सत्य की कल्पना केवल अन्धों का दौड़ है, जहॉ कोई रास्ता नहीं सूझता, केवल भटकनें ही भटकने है। वैसे किसी भी घटना को चमत्कार कहा जा सकता है। लेकिन गुरू घांसीदास जी को किसी तरह की चमत्कार में विश्वास नहीं था। वे जनता को परलोक के बदले, इस लोक की अर्थात व्यवहारिक दुनिया मे लाना चाहते थे।

गुरू घांसीदास के जन्म के समय की राजनीति, समाज और धर्म में सर्वत्र अराजकता, अशांति और कुव्यवस्था की स्थिति व्याप्त थी। राजनीतिक दृष्टि से देखें तो भोंसले ब्राह्मणों और अंग्रेजों के आतंक से पीड़ित छत्तीसगढ़ की जनता, क्षेत्रीय राजाओं का भरोसा छोड़ चुकी थी । चारों ओर शोषण अन्याय अत्याचार का बोल बाला था। जीवन के हर क्षेत्र में त्राहि- त्राहि मचा हुआ था। लोगों को चारों ओर केवल हताशा ही हताशा नजर आती थी। धार्मिक दृष्टि से पूरा क्षेत्र रहस्यात्मक और चमत्कारिक तंत्र मंत्र के बीच झुलस रहा था। सामाजिक दृष्टि से सवर्ण और अवर्ण के बीच की खाई बढ़ चुकी थी। ब्राह्मणवाद सिर चढ़ कर नंगा नाच रहा था। संकीर्णता द्वेष और अविश्वास इस स्तर पर पहुॅच गया था कि उच्च जाति खास कर ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्ग के लोग अपने को ईश्वर तुल्य घोषित करने में तुले हुए थे। शेष पिछड़ी दलित वर्गँ को गुलामों से भी बदतर जिन्दगी जीने के लिए मजबूर किया जा रहा था। उनके धन- सम्पत्ति, मान- सम्मान और आबरू खुले आम नीलाम हो रहे थे। शादी की डोली रास्ते में ही उठा ली जाती थी। खलिहान से कटी फसल उठा ली जाती थी। मराठा सैनिक, होल्कर व सिंधिया घरानों के पोषित पिंडारी, छत्तीसगढ़ के किसानों की खड़ी फसलों को काट लेते थे। चारों तरफ आतंक का सम्राज्य था। लोगों ने तंग आकर खेती करना भी बन्द कर दिया था। गरीबी और अभाव से जनता में अराजकता की स्थिति पैदा हो रही थी। अराजकता की स्थिति में विद्रोह की भावना स्वाभाविक है। साफ शब्दों में कहा जाय तो छत्तीसगढ़ की तत्कालिन परिस्थितियॉ अवर्णनीय है।

उपरोक्त विषम परिस्थितियों में गुरू घांसीदास ने सारी स्थिति को बारीकी से समझते हुए, अपने सतनाम आन्दोलन का सूत्रपात किया। आन्दोलन का शुरूआती दौर, जन मानस में चेतना जागृत कर आपसी प्रेमभाव पैदा करना तथा अन्धविश्वास को जड़ से समाप्त करना प्रमुख रहा है। यह बाद में संगठन शक्ति पैदा होने के साथ कान्तिकारी रूप लेता चला गया। इस आन्दोलन में वे दोस्त और दुश्मन के भेद को स्पष्ट करने में कामयाब रहे। फलस्वरूप पिछड़ी व दलित जातियॉ जो शोषण के शिकार थे, पास- पास आने लगे और बड़े पैमाने पर उनके अनुयायी बने। लोगों ने सामन्ती व्यवस्था का परित्याग कर नए पन्थ "सतनाम पन्थ" का अनुशरण किया। कान्ति के प्रारम्भिक दौर में ब्राह्मणवादी सामन्तों द्वारा अंग्रेजों से मिलकर बलपूर्वक रोकने की कोशिस की गयी। लेकिन 'कान्ति पथ के सिपाही' रूकने वाले कहॉ थे, गुरू घांसीदास के नेतृत्व में छत्तीसगढ़ की जनता ने ब्राह्मणशाही सामन्ती शोषकों का डटकर मुकाबला किये। गुरू घांसीदास के नेतृत्व में यह कान्ति का दौर **1820** से **1830** के बीच लगभग दस वर्ष तक लगातार चलता रहा। बाद में उनके मार्ग दर्शन पर इस आन्दोलन को आगे बढ़ाने में उनके सुपुत्र गुरू बालकदास ने अहम् भूमिका निभायी।

गुरू बालक दास

गुरू बालकदास वास्ताव में सतनाम पन्थ को आगे बढ़ानेवाले छत्तीसगढ़ के दूसरे पुरोधा रहे है। वे गुरू गोविन्दसिंह की तरह एक शसक्त सेना तैयार करना चाहते थे, जो मान - सम्मान एवं पन्थ की रक्षा के लिए पंच प्यारों की तरह अपने पन्थ के लिए कुर्बानी देने को तैयार हो। उस समय सामन्ती प्रथा प्रचलित थी। अतः लोगों की मनोभावनाओं को ध्यान में रखते हुए, उन्होंने राजशी ठाठ बाट के साथ हाथी की सवारी पर अपना प्रचार प्रसार अभियान चलाया। उनके अंग रक्षक हर पल साथ रहते थे। वे अपने प्रचार के दौरान गांव के बाहर रावटी लगाते थे और पूरे गांव को सतनाम आन्दोलन में जोड़ते थे । वे जितने गांव गये उन गांवों में रहने वाले विभिन्न समुदाय के लोग, सतनाम पन्थ का अनुशरण करने लगे। उनके बढ़ते प्रभाव से सवर्णो में खलभली मच गई। सवर्णो को डर लगने लगा कि कही यह आन्दोलन पूरे छत्तीसगढ़ को सतनाम मय न बना दे । सवर्णो को अपने अस्तित्व का खतरा महशूस होने लगा, कि कहीं उनका मुफ्तखोरी बन्द न हो जाय। वे भीतर ही भीतर गुरू बालकदास की हत्या का योजना बनाने लगे और एक रात औरावांधा गांव में धोखे से ब्राह्मणवादी सवर्णो ने अपने मनसूबे को पूरा कर डाला। गुरू बालकदास सतनाम के आन्दोलन के अलख जगाने वाले प्रणेता दुश्मनों के हाथ शहीद हो गये। ऐसे सत् चेतना के पुरोधा को शत् शत् प्रणाम। बाद में सही नेतृत्व के अभाव में उनका यह आन्दोलन दब सा गया। जिस दिन यह सतनाम पन्थ जाग जायेगा, उठ कर खड़ा हो जायेगा तब निश्चय ही आपकी कुर्बानी याद करेगा .... ।

सतनाम आन्दोलन का स्वरूप

तत्कालीन समय में यज्ञोपवीत सवर्णो का प्रतीक और सम्मान सूचक माना जाता था। सवर्ण जनेऊ पहनकर अपने आप को हिन्दू समाज में सर्वोच्च्य तथा ईश्वर तुल्य, धरती का स्वामी समझने लगे थे। गुरू बालकदास ने सबसे पहले ईश्वर की सत्ता को नकारा। वे चाहते थे कि इंसान- इंसान में आपस में कोई भेद भाव नहीं होना चाहिए । दुनिया के सारे मानव एक बराबर हैं फिर ऊँच नीच का भाव

कैसा। अतः सवर्णो की झूठी शान का पर्दाफाश करने तथा समाज में व्याप्त मनगढ़न्त धारणा को समाप्त करने के लिए सतनामियों में जनेऊ प्रथा चला कर, जन जागरण अभियान प्रारम्भ किया। वे जानते थे कि कोई जन्म से या जनेऊ पहन लेने से ऊॅचा नहीं होता। व्यक्ति ऊॅचा अपने विवेक एवं कर्म से होता है। वे सबको इंसान बनाना चाहते थे, ताकि यह धरती मानव समाज के लिए रहने लायक बन सके। उन्हें सवर्णों की झूठी शान पर शर्मिन्दगी महशूस होती थी। उन्होंने इस कुधारणा को समाप्त करने के लिए सबसे पहले खुद सुन्दर रेशमी धागे का जनेऊ पहनकर आम जनता को जनेऊ पहनाना शुरू किया। फलस्वरूप लोगों के मन मे व्याप्त कुधारणा का अन्त हुआ। इसका इतना प्रभाव पड़ा कि क्षेत्र की पिछड़ी जातियों के अलावा कंवर आदिवासियों व बस्तर जिला के अनेको समुदाय के लोगों ने जनेऊ पहनकर गुरू बालकदास के समतावादी विचारधारा का खुलकर समर्थन किया।

सोनाखान के बिंझवार नरेश रामराय के सुपुत्र वीरनारायणसिंह गुरू बालकदास के अच्छे मित्र बन गये। दोनों ने मिलकर सतानाम आन्दोलन को अच्छी गति प्रदान की। दोनों सोनाखान तथा आस पास के जनता के कर्णधार बन गये। साम्प्रदायिकता, सामन्तवाद और साम्राज्यवाद को धूल चटाना उनका लक्ष्य था। दोनों मिलकर अन्याय-अत्याचार के विरूद्ध संघर्ष कर, अन्धविश्वास और रूढ़िवाद को जड़ से समाप्त करने की योजना बना डाली। ब्राह्मणवाद थर्रा उठा और दोनों को अलग अलग मरवाने की योजनाऍ बनने लगी।

इस बीच छत्तीसगढ़ से भोंसला शासन समाप्त हो, हुकुमत अंग्रेजों के हाथ चला गया। सन् **1856** के भीषण अकाल को आज भी छत्तीसगढ़ की जनता नही भूला पायी। गरीबी और भूखमरी को इंगत करने के लिए मुहावरा बन गया “छप्पन परगे का”। इस छप्पन के भीषण अकाल में छत्तीसगढ़ की भूखी जनता के हित में वीरनारायणसिंह ने अग्रेजों के अनाज से भरे गोदाम खोलवा दिया। इससे अग्रेज शासक नाराज हो **10** दिसम्बर **1857** को बीरनारायणसिंह को रायपुर में फांसी पर चढ़ा दिया। इस तरह हमारे प्रेरणाश्रोत वीरनारायणसिंह जनता के हित में शहीद हो गये। सवर्णो की सलाह पर अंग्रेजों ने बिंझवार व अन्य आदिवासियों को आततायी एवं आतंकवादी तथा सतनामियों को खतरनाक अपराधी घोषित कर दिया। इन दोनों का मुक्ति संग्राम लगभग चालिस वर्षो तक चला।

गुरू बालकदास ने अपना आन्दोलन तेज कर दिया। गांव गांव जाकर लोगों को सतनाम आन्दोलन में शामिल होने के लिए प्रेरित करने लगे। गुरू बालकदास जब प्रचार प्रसार को जाते थे तव उनकी सफेद हाथी की सवारी होती थी। उनके दोनों तरफ अस्त्र शस्त्र से लैस अंगरक्षक होते थे। वे गांव के बाहर रावटी लगाते थे और सतनाम का सन्देश गांव में जाकर सुनाते थे। लोग उनकी बाते सुनकर साथ चलने को तैयार हो जाते। इस तरह सतनाम आन्दोलन गांव गांव में तेजी से फैलने लगा। उन्होंने भटगांव जमीदारी में हाथी घोड़े और ऊॅट की सवारी से एक शोभायात्रा निकाली जो राजकीय सम्मान से कम नहीं था। उनका कर्मभूमि बोड़सरा (बिल्हा के पास) को बताया जाता है। वहॉ उनका एक बहुत बड़ा बाड़ा था। आज किसी ने कब्जा कर रखा है।

गुरू बालकदास का यह सतनाम आन्दोलन सवर्णो को रास नहीं आया। सन् **1869** के फाल्गुन कृष्णपक्ष अमावस्या की काली अन्धेरी रात को औराबांधा गांव में एक षडयंत्र के तहत, धोखे से उनकी हत्या कर दी गई। वे एक अनुयायी के अत्यंत आग्रह करने पर उसके घर खाना खाने जा रहे थे। सवर्ण दुश्मनों ने अन्धेरी रात का फायदा उठाकर अचानक हमला कर दिया। इस हमले में वे दुष्ट सवर्णो के हाथ मारे गये। सरहा और जोधई दो अंगरक्षकों ने उन्हें बचाने का प्रयास किया। लेकिन वे सफल नहीं हो पाये। उनके बाद से आज तक नेतृत्व के अभाव में दिशा विहीन हो सतनाम आन्दोलन अपने मार्ग से भटक गया है।

सतनाम आन्दोलन आज अपने मूल स्वरूप सामाजिक परिवर्तन के बदले राजनीतिक गलियारों में भटकता, दम तोड़ता नजर आता है। समाज दिशाहीन अस्त व्यस्त बिखरा पड़ा दिखाई देता है। यह अत्यंत चिन्ता का विषय है कि उनका बौद्धिक आन्दोलन आज चमत्कारिक स्वरूप लेता जा रहा है। कोई भी आन्दोळन चमत्कार के सहारे न तो कभी चला है और न कभी चल पायेगा। अन्यथा जादूगर पी. सी. सरकार आज सबसे बड़ा आन्दोलनकारी होता। समाज को चमत्कार के बदले बौद्धिक चेतना की आवश्यकता है। मेला और जयन्ती का प्रारूप चढ़ोतरी और धन अर्जन के बदले ज्ञानवर्धक होना चाहिए। आवश्यकतानुसार आर्थिक मजबूती का रास्ता अपनाना जरूरी है। लेकिन धन अर्जन निश्चित उद्देश्य के साथ किया जाना चाहिए जिससे सफलता मिलेगी। समाज का मनोबल बढ़ेगा।

रसेळ तथा हीरालाल (खण्ड **1 1916**) ने सतनाम आन्दोलन को एक सामाजिक युद्ध की संज्ञा दी है, जिसमें मराठों, अंग्रेजो, सामन्तों व मालगुजारों के खिलाफ उठने वाला यह विद्रोह अन्त में सभी (सवर्ण) हिन्दुओं के प्रति मुड़ जाता है। यदि ब्रिटिश शासन का अवरोधी प्रभाव न होता तो अब तक छत्तीसगढ़ में सतनाम आन्दोलन एक 'सामाजिक युद्ध' का रूप ले लेता। इससे सवर्णो को काफी नुकसान पहुॅचता और उनके पीछे चलने वाले (अनुयायी) कोई नहीं मिलता। यहॉ तक कि शोषक वर्ग के हितसाधकों को भी सतनाम के मानने वालों ने नकार दिया। ब्राह्मण -क्षत्रिय -वैश्य की त्रिमूर्ति पर अपना विरोध व्यक्त करते हुए सतनामियों ने शक्ति की राजनीति को बखूबी पहचाना था।

सतनाम चेतना

चेतना की स्थितियॉ भी दो प्रकार की होती है सकारात्मक और नकारात्मक । जहॉ **सकारात्मक** चेतना उन्नति -उन्मुख भाईचारा पर आधारित मानवीयता की दिशा प्रशस्थ करती है। जैसे महामानव बुद्ध की चेतना का परिणाम 'बहुजन हिताय - बहुजन सुखाय' की बात कहते हुए विश्व शांति की ओर मार्ग प्रशस्थ होता है। सन्त कबीर, गुरूनानक एवं गुरू घांसीदास की चेतना भी इसी ओर इंगत करता है। इसे ही उन्होंने सत्नाम या सत्- चेतना कहा अमानवीय व्यवस्था के विरूद्ध मानवीय व्यवहारों को प्रेत्साहित किया। यह सकारात्मक सोच का परिणाम है।

वहीं **नकारात्मक** चेतना मानसिक ह्रास परिणाम होता है। भारत एक खोज टी वी सिरियल में जिस तरह दिखाया गया कि आर्य जब भारत की ओर आये, उन्होंने लूट पाट, चोरी- डकैती का रास्ता

अपनाते हुए यहॉ के लोगों में आपसी विभेद उत्पन्न करना प्रारम्भ किया। बाद में साम, दाम, दंड और भेद की नीति अपना कर, इस भारत भूमि पर कब्जा करने का तरीका अपनाया। नकारात्मक प्रवृत्ति संस्कृति को विकृत करता है। हिंसा की भावना को प्रेरित करता है। जैसे दशहरा में काल्पनिक रावण का पुतला जलाना, दीवाली के अवसर पर धर्म के नाम पर जुआ खेलना सिखाना, मुख से ब्राह्मण पैदा, कान से कर्ण पैदा होने आदि की बात करना, समुचा ब्राह्मणवाद, नकारात्मक चेतना का परिणाम लगता है। इसमें कही भी सकारात्मक सोच प्रकिया नहीं नजर आती है।

सकारात्मक चेतना शोषण, अन्याय- अत्याचार, अन्धविश्वास, रूढ़िवाद आदि का विरोध करने के लिए मानव समाज को प्रेरित करता है। यह आमूल परिवर्तन की दिशा दर्शाता है। आमूल परिवर्तन की आवाज उठने से ही यथास्थितिवादी वर्ग बौखलाने लगता है। **यथास्थिति** का हितग्राही वर्ग दूसरों के मेहनत पर मौज उड़ाता है। परिवर्तन से उसके मौज- मस्ती के दिन समाप्त होने के भय सताने लगता है। फलस्वरूप उनमें प्रतिकारात्क भावना जाग्रित होती है। इस तरह शोषक वर्ग द्वारा नकारात्मक चेतना उत्पन्न होना स्वाभाविक है। सकारात्मक चेतना सत्य पर आधारित होता है। नकारात्मक चेतना रूढ़ीवाद, अन्धविश्वास जैसी असत्य बातों पर टिकी होने के कारण, समूल नष्ट से बचने के लिए सुधारवाद की राह अपनाता है। सत्य के उजागर होते ही असत्य का पर्दाफाश होना निश्चित है। सुधारवाद क्षणिक प्रकिया है और परिवर्तन स्थायी प्रकिया है। इसीलिए शोषक वर्ग परिवर्तन के बदले सुधारवाद की बात करता है। नकारात्मक चेतना शोषक वर्ग में उत्पन्न होती है।

उदाहरण के लिए गीता की रचना बुद्ध के बाद भारत में आयी कान्ति के परिणाम स्वरूप एक प्रतिकान्ति के रूप में वैदिक दर्शन में परिवर्तन नजर आता है। यह नकारात्मक चेतना का परिणाम है। गीता का उद्गार बौद्धिक कान्ति के प्रतिकार स्वरूप वैदिक प्रतिकान्ति का परिणाम नजर आता है। इसे विद्वानों ने "कान्ति के बाद प्रतिकान्ति" कहा। जब कर्म काण्ड का तिरस्कार होने लगा तब ज्ञान काण्ड को समावेश करना पड़ा। जय- व्यास द्वारा रचित पाण्डु महाकाब्य के रूप में, भारत- वैशम्पायन द्वारा कर्म काण्ड और महाभारत- की रचना कर्मकाण्ड के साथ भक्ति काण्ड के रूप में था, लेकिन गीता और भगवद् गीता में ज्ञान काण्ड समावेश बहुत बाद में हुआ।

गुरू घांसीदास की चेतना **सकारात्मक** चेतना थी। उन्हें 'अपने और पराये' या 'स्व और पर' अथवा 'दोस्त और दुश्मन' का अच्छी तरह बोध था। उन्होंने समाज को आमूल परिवर्तन की दिशा में प्रेरित किया। गुरू घांसीदास अच्छी तरह समझ रहे थे कि किस आधिकारिक संरचना के कारण दलित शोषितों (शूद्रों) का शोषण हो रहा है। समाज के शोषण का मुख्य कारण इस देश की ब्राह्मणवादी समाज व्यवस्था है जो समाज को वर्ण और जाति में विभाजित कर रखा है। सवर्णो ने धर्म के नाम पर कर्म और अधिकार का निर्धारण अपने हित में बनाये रखा। इसे कर्मकाण्ड, रूढ़िवाद और अन्धविश्वास के सहारे संचालित किया जाता है। यही वह मशीन है जिसके द्वारा सवर्णो के अधिकार सुरक्षित हैं। सकारात्मक चेतना शोषित वर्ग में उत्पन्न होती है। इसके कारण उनमें अपने ऊपर हो रहे शोषण के खिलाफ आवाज उठाने की शक्ति एवं साहस पैदा होती है। यही वास्तव में सतनाम चेतना है।

गुरू घांसीदास अनीश्वरवादी ः

गुरू घांसीदास पक्के अनीश्वरवादी थे। उनका मूर्ति पूजा तथा किसी देवी देवताओं में कोई विश्वास नहीं था। वे सन्त कबीर की तरह कहते थे, कि मूर्ति पूजा मत करो। पन्थी गीत से पता चलता है कि उन्होंने मन्दिरों में जाने से मना किया है ः- "गांव गांव में सभा करिन जुटे हजारों लोग, छत्तीसगढ़ में बन्द करिन मूर्ति पूजा के रोग।" उनका कहना था कि "**मन्दिरवा में का करे जाबो,** अपन घट ही के देव ला मनाबो।" मन्दिर काल्पनिक व अदृष्य ईश्वर की सत्ता का ऐसा संस्था है जहॅा भगवान के नाम पर पुरोहित ब्राह्मण का महत्व बढ़ता और सम्माानित होता है। शेष जनता महत्वहीन हो अपमानित होती है। यह एक ऐसी संस्थान है जो जातिवाद और ऊॅच नीच के भेद भाव को जन्म देता है। "पूजिय विप्र शील गुण हीना, शूद्र न गुण गण ज्ञान प्रवीणा।"

कबीर साहब के शब्दों में "पाहन पूजिय हरि मिलै, तो मैं पूजॅू पहाड़। इससे तो चाकी भली, पीस खाय संसार।" उसी तरह गुरू घांसीदास ने स्पष्ट करते हुए कहा कि "**पथरा के देवता हालै नई तो डोलै**।" अर्थात पत्थरों के पूजने से तुम्हें कुछ नहीं मिलेगा, जो न तो हिल सकता है और न ही बोल सकता है, न सूंघ सकता है, न खा सकता है। यदि पूजा करना है तो इन्सान एवं इन्सानियत की करो जो सच्ची पूजा है। पत्थर पूजा वास्तव में भाग्य और भगवान दोनों के नाम पर, अपने कर्म को दोष देने का यह अच्छा तरीका है और काम चोर को काम न करने का उत्तम बहाना भी। गुरू घांसीदास अपने काम पर भरोसा रखते थे। उनका कहना था कि '**अपन घट ही के देव ला मनाबो**' यदि आप कुछ हासिळ करना चाहते है तो अपने कर्म को दोष देने के बजाय अपने अन्दर छिपी शक्ति **सत्- चेतना** को जागृत करो। सत्य को पहचानो, जो तुम्हे आत्मविश्वास के साथ काम करने की क्षमता पैदा करेगा और शोषण से मुक्ति देगा। यही सत्य मार्ग और असली सतनाम चेतना पथ है।

सन्त रविदास ने भी अपने मेहनत को सच्चा सालिकराम कहा। मेहनत से धन उपजता है और धन से पेट भरता है। एक बार कांशी में भगवान के साक्षात जिन्दा होने की बात कही गई। सन्त रविदास इस अफवाह और गलतफहमी का पर्दाफाश करने के लिए चेतावनी देते हुए शर्त रखा कि 'यदि तुम्हारा भगवान सचमुच शक्तिशाली है तथा जिन्दा है, तो ले आऔ और चलो गंगा के पानी में फेंक कर देखो, मैं भी अपने सालिकराम को फेकूंगा और जिसका भगवान वापस चला आयेगा उसे सच्चा माना जायेगा।' इस पर ब्राह्मण घबरा गये कि उनकी पत्थर की मूरत पानी में वापस कैसे आयेगा। पत्थर तो डूब जायेगा। लेकिन सन्त रविदास अपने लकड़ी के औजार को जिसमें अकसर काम करते थे 'ये देखो मेरा सालिकराम कह कर गंगा की धारा में फेंक दिया, जो बहते हुए किनारे वापस आ गया।' इस तरह असत्य पर सत्य की विजय हुई और ईश्वर के जिन्दा होने की झूठी कहानी का पर्दाफाश किया। कांशी के ब्राह्मण सन्त रविदास के सामने नत मस्तक हुए।

सन्त रविदास के अनुसार ः

सांच सुमिरन नाम विसासा। मन वचन कर्म कहे रविदासा।।
सच्चा सुख सत धरममहि धन संचय सुख नाहि।
धन संचय दुख खान है रविदास समुझि मन माहि।।

सतनाम ऐसा क्रान्ति का पथ है, जो भक्ति नहीं बल्कि शक्ति पथ है। शक्ति, चेतना में निहीत है। चेतना मनुष्य या प्राणियों में आत्मबल पैदा करती है। भाईचारा के साथ मानवीय हितों की रक्षा के लिए संगठन शक्ति के साथ संघर्ष को प्रेरित करती है।

भक्ति अन्धश्रद्धा पर आश्रित है। भक्ति पथ का आधार आस्था है, जो श्रद्धा (आदर) और विश्वास (भरोसा) के ऊपर जब अंधापन छा जाता है तभी यह आस्था उत्पन्न होती है जिसे अंधश्रद्धा और अंधविश्वास कहा जाता है। भक्ति परस्त आस्था मनुष्य को विवेकहीन और पराश्रित बना देता है जैसे तुलसीदास के अनुसार "होइहै वही जो राम रचि राखा।" यदि फल पूर्व नियोजित है तो फिर कर्म की आवश्यकता क्या है ? अर्थात कुछ भी कर्म करो फल तो वही मिलेगा जो पूर्व निर्धारित है। इस तरह अंधविश्वास, अंधश्रद्धा और झूठी आस्था मनुष्य को निष्क्रिय बना देता है। मनुष्य कर्म के बदले भाग्य पर आश्रित हो जाता है। जब मनुष्य का भाग्य या तकदीर साथ नहीं देती, तब वह भगवान के चक्कर काटने लगता है। अपने कर्म को सुधारने के बजाय उसे दोष देना प्रारंभ कर देता है। इस तरह भाग्य और भगवान के खतरनाक चक्रव्यूह में फंस जाता है कि वहॉ से बाहर निकल पाना मुश्किल हो जाता है। वह मनुष्य जिन्दगी भर छटपटाते रहता है।

सतनाम चेतना ही ऐसी शक्ति है जो इस भाग्य और भगवान के खतरनाक जाल से छुटकारा दिला सकती है। इसी को गुरू घांसीदास ने "अपन घट ही के देव ला मनाबो" कहा जो आत्मशक्ति को जागृत करने का एक तरीका है। सत्य को समझो परखो और तर्क के द्वारा सत्यापित करो तभी उसे मानो। अपनी बुद्धि तथा विवेक के साथ अपने कार्य पर भरोसा रखो। तभी अपने जीवन को सफल बना पाओगे।

आचार विचार में सादगी ः

गुरू घांसीदास जी का अहिंसावादी सोच व **खान पान** में सादगी "सादे जीवन उच्च्य विचार" का परिचायक है। उन्होंने मांस मदिरा के भक्षण को मना किया है। उनका कहना था "**तोर पिरा हर ओतकेच अकन आय जतका मोर आय।**" सब घट बसै एक ही जीवा, सब प्राणी को एक सा दर्द होता है चाहे वह व्यक्त कर पाये या नहीं कर पाये पर उसे महशूस होता है। फिर किसी जीव का हत्या क्यों ? जीव हत्या करना अर्थात सत् रूपी चेतना को नष्ट करना है। चेतना के अभाव में प्राणी जड़वत हो जाता है। उनकी सोच गौतमबुद्ध के बिल्कुल करीब चला जाता है।

गुरू घांसीदास जी के अनुसार लालच बुरी बला है। उन्होने गोपाल मरार के खेत में हल जोतते समय एक सोने से भरा हंडा पाया। उनके साथियों ने आपस में बांट लेने की सलाह दी । लेकिन घांसीदास जी ने वह हंडा खेत के मालिक को दे दिया जो उसका हक बनता था। "**मोर हर तोर आय, तोर हर मोर बर किरा आय**" उनके कथनी और करनी में कोई अन्तर नहीं था।

ः नारि के सम्मान एवं उत्थान ः

उस काल में नारी समुदाय के प्रति समाज का द्रीष्टकोण प्रतिष्ठापूर्ण एवं अनुकुल नहीं था। अतः नारी उत्थान तथा उनी दशा में सुधार लाना सतनाम आन्दोलन का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य रहा है। समाज में नारी वर्ग की प्रासंगिकता के साथ सम्मान की भावना जागृत करना जरूरी था ताकि समाज के विकास में उनका बराबर का योगदान हो। वे चाहते थे कि स्त्रियों की जीवन के हर क्षेत्र में सहभागिता हो। उनके अनुसार केवल पुरूषों का विकास एकांगीपन होता है, लेकिन नारि के उत्थान से परिवार के साथ समाज का सर्वांगीण विकास संभव है। स्त्री और पुरूष गाड़ी के दो पहिया है। अगर एक पहिया पटरी से उतर जाता है तो अकेला दूसरा पहिया वजन नहीं संभाल पायेगा। दोनों पहिए का बरावर चलना आवश्यक है।

सतनाम आन्दोलन में नारी शक्ति का महत्वपूर्ण भूमिका रही है। उसकाल में समाज में सतीप्रथा, बाल- विवाह, बहुपत्नि जैसे अनेकों कुपरंपरायें व्याप्त थी। सतनाम आन्दोलन ने इन सब परंपराओं को जड़ से समाप्त करने का प्रयास किया। गुरू घांसीदास ने सतीप्रथा के बदले विधवा विवाह लागू किया। उन्होने नारी वर्ग को समाजिक एवं पारिवारिक उत्पीड़न से उन्हें मुक्ति दिलाने हेतु चूड़ी प्रथा चलाया ताकि उन्हें बराबरी का दर्जा मिल सके।

उन्होंने **परायी स्त्री** पर बुरी नजर रखने तथा पराये धन पर लालच करने को पाप कहा। नारी वर्ग को समाज के उत्थान में सहभागिनी बनाते हुए बरावर का हिस्सा देना चाहते थे। औरतों को घर के काम- काज के साथ- साथ खेतों में काम करने की सलाह गुरू घांसीदास ने दिया, ताकि आमदनी के साथ घर-परिवार के निर्माण में उनकी बरावर की भागेदारी हो।

उस वक्त सवर्णो में चूड़ी प्रथा तो बहुत दूर की बात है, विधवा विवाह तक वर्जित था। विधवा औरत को एक कमरे में बन्द कर दिया जाता था। उसीं कमरे में रह कर अपना जीवन बिताना पड़ता था। दिन में बाहर निकलना मना था। रात के अन्धेरे में विधवा को निकलने दिया जाता था। ऐसे विषम परिस्थिति में घांसीदास जी ने विधवा विवाह के साथ चूड़ी प्रथा को उन्होने प्रोत्साहित किया।

सन् **1855** में पूना में एक विधवा ब्राह्मणी ने अपने घर में किसी रिस्तेदार के साथ शारीरिक संबंध स्थापित कर गर्भावस्था धारण कर ली। ब्राह्मण समाज पीड़ित महिला को संरक्षण देने के बजाय प्रताड़ित करना चाहता था। दुखी महिला नें ज्योतिबा फूले से संरक्षण मांगी। ज्योति बा फूले माली समुदाय के थे। यह समस्या ब्राह्मणों की थी। उन्होंने जाति से हटकर नारियों की समस्या को गम्भीरता से समझा। इस समस्या के समाधन हेतु पूना में विधवा आश्रम खोला, जिसका ब्राह्मणों ने डटकर विरोध किया। भारत में यदि **नारी** शिक्षा का योगदान महात्मा ज्योतिबा फूले को जाता है तो वही समानता के अधिकार दिलाने का श्रेय गुरू घांसीदास जी को जाता है।

अन्धविश्वास और रूढ़िवाद का अन्त

मन्दिर एक ऐसा संस्थान है जो जातिवाद और ऊँच नीच के भेद भाव को जन्म देता है। वहॉ भगवान के नाम पर ब्राह्मण अपना महत्व बनाता है। शेष जनता अपमानित होती है। "पूजिय विप्र शील गुण हीना, शूद्र न गुण गण ज्ञान प्रवीणा।। जे वर्णाधम तेली कुम्हारा। स्वपच किरात कोल कलवारा ।।" अतःघांसीदास जी मूर्ति पूजा व मन्दिरों जाने से सक्त मना किया है ः- "गांव गांव में सभा करिन जुटे हजारों लोग, छत्तीसगढ़ में बन्द करिन मूर्ति पूजा के रोग।" उनका कहना था कि "मन्दिरवा में का करे जइबो।" आगे स्पष्ट करते हुए बताया कि **"पथरा के देवता हालै नई तो डोलै। पथरा के देवता सूंघे नई जानै।ओमा का नारियल फूल आगरबत्ती चढ़ाबो।"** उनका सन्देश है - मेहनत करो। पत्थर के पीछे अपना कीमती समय मत गंवाओ। समय का सदुपयोग करो। भाईवारा और आपस में प्रेम करते हुए मानवता को विकसित करो। यह तुम्हे अच्छा फल देगा।

उन्होंने **गंगा स्नान और मरने के बाद पिण्डदान** को महामूर्खता कहा **"जीते जी डण्डा मारे, मरे ऊपर गंगा में डारे।"** उन्होंने समाज को गंगा स्नान के लिए जाने को मना किया। क्योंकि ढोंगी पण्डे पुराहितों ने अपने लाभ कमाने के लिये गंगा के पानी को पवित्र बताया है। पूण्य कमाने की लालच में उनके चंगुल में फंस जाओगे। यदि गंगा के पानी में इतने गुण होते तो सुअर जो रोज गंगा में डूबा रहता है सीधा स्वर्ग चला गया होता।

सन्त कबीर ने कहा है कि **"मूड़ मूड़ाये हरि मिलै, तो मैं लेऊं मूड़ाय । बार बार के मूड़ते, भेड़ न बैकुन्ठ जाय।।"** इसी तरह सन्त रविदास ने कहा कि " मन ही पूजा मन ही धूप, मन ही सेऊँ सहज सरूप, मन चंगा तो कठौती में गंगा" अर्थात सब जगह का पानी एक जैसा होता है। गुरू घांसीदास पोंगा पंडिताई में विश्वास नहीं करते थे। उनके ज्ञान का आधार व्यवहारिकता थी । मानव - मानव के बीच आपसी प्रेम व भाईचारा ही मुख्य सन्देश था। "पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ पंडित भया, न कोय ढाई आखर प्रेम का पढ़ै सो पंडित होय। इस तरह सतनाम आन्दोलन ने धार्मिक आडम्बरों एवं सामाजिक कुरीतियों के विरूद्ध शंखनाद किया। फलस्वरूप समूचे छत्तीसगढ़ में कबीर के बाद धार्मिक एवं सामाजिक सुधार का यह अनूठा उदाहरण बन गया।

गुरू घांसीदास का नैतिक व सामाजिक दर्शन

गुरू घांसीदास जी के नैतिक दर्शन का मुख्य श्रोत उनके उपदेश और सिद्धान्त है। उनका सतनाम दर्शन काल्पनिक नहीं अपितु व्यवहारिक सत्य पर आधारित है। जन मानस को अलौकिक (असत्य) जगत से बाहर खींच कर लौकिक जगत में लाने का प्रयास किया। उनके विचारों में कहीं आध्यात्मिकता व धार्मिकता का समावेश नहीं नजर आता। काल्पनिक जगत से परे वे इस धरती को ही स्वर्ग बनाना चाहते थे। उनके विचार शुद्ध बौद्धिक थे। उनका कथनी और करनी में कोई अन्तर नहीं था। वे साधु पुरूष थे तथा उनमें कोई महत्वाकांक्षा नहीं था। वे साधारण इंसान बने रहना चाहते थे जैसे **"मोर सन्त मन, मोला काकरो ले बड़े झन कइहा। नई तो मोला हुदेसना मा हुदसे कस लागही।"**

सादा जीवन उच्च विचार ही उनकी प्रभुता का सार है। सन्त कबीर की तरह वे वाणी के दो टूक स्पष्ट व सरल स्वभाव के थे। फलस्वरूप आम जनता उनके विचारों से स्वाभाविक आकृष्ट हो जाती थी। उन्होंने कभी अपने विचारों को दूसरे पर थोपने की कोशिस नहीं की, बल्कि लोगों ने स्वेच्छा से उनके सतनाम मार्ग का अनुशरण किया। यही नैतिकता मनुष्य और समाज के बीच के रिश्तों को तय करती है। उनके नैतिक दर्शन में भाग्यवादी जीवन का कोई स्थान नहीं था। उन्होंने **गीता** के 'निष्फल कर्म के सिद्धान्त' को नहीं माना। बल्कि वे कहते थे कि "मेहनत का फल मीठा होता है। अपने परिश्रम पर भरोसा करो, वही तुम्हे, तुम्हारी समस्या से मुक्ति देगा।" उनका सतनाम दर्शन बुद्ध की तरह नैतिकता के अन्तर्मुखी भाव से जुड़ा हुआ है, जिसमें विरक्ति नहीं अपितु निष्ठा है। उनके लिए वाह्य आडम्बर के बदले आंतरिक शुद्धि ज्यादा महत्वपूर्ण लगता है।

उन्होंने मानवीयता का मूल मंत्र प्रेम व भाइचारा को जीवन का उत्तम मार्ग बताया। इसे अमली जामा देने के लिए उन्होंने सत्संग या चौका का रास्ता बताया जो अत्यंत व्यवहारिक है। उनका समाज दर्शन समता और सम्मान के साथ जातिविहीन एवं पूर्ण सामाजिक समानता पर आधारित है। यही सब उनके आचार विचार सतनाम आन्दोलन के लिए नीति निर्धारक तत्व है, जो हमेशा उनके अनुयायियों को नैतिक जीवन जीते हुए सामाजिक संरचना के लिए प्रोत्साहित करते है। उनके अनुसार सतनाम एक जीवन जीने का तरीका है जो रूढ़िवाद और अन्धविश्वास से कोसों दूर शोषण रहित समाज व्यवस्था है। उनकी करूणा, शील, दया के साथ अहिंसावादी सोच जो विश्व शान्ति के लिए आवश्यक है, उन्हें आज मानवता से भी कहीं ऊपर महामानव की श्रेणी मे ले जाती है।

गुरू घांसीदास ने समाज सेवा को जीवन का महत्वपूर्ण कार्य बताया। ठीक उसी तरह जिस तरह डा. अम्बेडकर ने समाज सेवा को सर्वोत्तम कार्य बताते हुए कहा है कि *" आपको अपने लक्ष्य की पवित्रता में अडिग विश्वास होना चाहिए। महान हैं आपके उद्देश्य और महिमामय है आपका मिशन। धन्य है वे ! जो अपने जनक समाज के प्रति अपने कर्तव्य पालन हेतु सजग हैं। सौभाग्यशाली है वे ! जो अपना समय, अपना विवेक एवं अपना सर्वस्व दासता से विमुक्त होने में अर्पित कर देते हैं। गौरवशाली है वे ! जो दासता में जकड़े हुए अपने समाज बान्धवों की मुक्ति के लिए गुरूत्तर विषमताओं, हृदय विदारक अपमानों, काल झंझावतों एवं संकटों के बावजूद तब तक अपना संघर्ष जारी रखते है जब तक कि पद दलित जन अपना मानवीय अधिकार हासिल नहीं कर लेते।"*

जातिविहीन समाज की स्थापना ः

सतनामी कोई जाति नहीं होता है बल्कि यह 'सतनाम' केवल एक व्यवहार है जो मनुष्य को मानवता पथ में चलने को प्रेरित करता है। गुरू घांसीदास के इस आन्दोलन से प्रेरणा लेकर छत्तीसगढ़ में विभिन्न जातियों में बंटे लोग सतनाम पंथ के अनुयायी बन गये। सतनामियों की बढ़ती जन संख्या को पंथी गीत के माध्यम से इस तरह वर्णन करते हैं।

सतनामी के संख्या दिन दिन बाढ़त जावै भारी ....
गोंड़ कंवर कोरी पासी चमरा महरा मोची, राउत औ रोहिदास तेली सतानाम ल गाइन,

अहीर ब्रजवासी मवली बरई अऊ तमोली, राऊत गोवारी बंजारा हरबोला अऊ गोधली,
गड़रिया गुण्डेर धुनकर धनका कोडार, लोहार पीड़ा जोगीनाथ के।
भुंजी भाट चरण सुतिया धोबी अऊ धनवार, ढीमर केवट मांझी कोस्टा कसेर अऊ सोनार,
तुरहा कश्यप निषाद बाथम सिगरहा, ठोली दमामी हरिदास।
डडसेना कलौटा कोलवा तेली अऊ कोटवार, राजगिरी चित्रावर दर्जी सिपी अऊ मरार,
गांव के गांव बन गिन सतनामी झाराझार, हम सब इही म गिनाथन सतनाम पन्थ के।

गुरू घांसीदास जी के सतनाम आन्दोलन ने जातिविहीन समाज की स्थापना कर **वर्ण और जातिभेद** को कसकर चॉटा मारा। सतनाम की मार से ब्राह्मणवाद तिलमिला गया। इस आन्दोलन को रोकने के लिए लोगों को गुमराह किया जाने लगा। झातिवादियों ने आंदोलन रोक न पाने की स्थिति में आंदोलनकारियों को एक नया जाति "सतनामी" की संज्ञा दे डाली। वे यहीं शांत नहीं हुए बल्कि उत्तर प्रदेश से पण्डे लाकर सतनाम के सामानान्तर में रामनामी तथा सूर्यवंशी पंथ खड़ा कर दिये। पिछड़ी जातियॉ जो कबीर की कातिकारी विचारधारा से जुड रहे थे, उन्हें भक्ति मार्ग की ओर मोड़ते हुए चौका चन्दन में व्यस्त कर दिये। इस तरह सतनाम पन्थ जो जाति विहीन वर्ग बन रहा था उसको छत्तीसगढ़ में रोका गया।

गुरू घांसीदास का सतनाम आन्दोलन एक जाति विहीन समाज की दिशा में महत्वपूर्ण कदम नजर आता है। लेकिन जाति के हितग्राही वर्ग ने इसे जाति का दर्जा दे दिया । मुंगेली के पास के किसी ब्राह्मण ने गुरू घांसीदास को कहा था कि "आज हम तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ सकते, क्योंकि आज क्षेत्र की जनता तुम्हारे साथ है लेकिन कल तुम्हारे जाने के बाद हम फिर से तुम्हारे लोगों को गुलाम बना लेंगे तब कौन रोकेगा।" उसने एक पुस्तक लिखकर रतीदास नामक एक मतिभ्रष्ट सतनामी का उपयोग कर पुनः अन्धविश्वास और रूढ़िवाद की ओर सतनामियों को मोड़ने का कोशिस किया।

हीवेट के अनुसार 'सतनाम पन्थ किसी भी वर्ग के लोगों का मतान्तरण कर सकता था।' उन्होंने खुद यह पाया कि 'घांसीदास के प्रभाव से अन्य जातियों के अनेक लोग सतनामी हो गये थे। इनमें अहीरों की संख्या सर्वाधिक थी। ऐसे मतान्तरण घांसीदास के जीवन काल में सन् 1840 से 1850 के बीच सर्वाधिक हुए थे। यदि ऐसा न होता और अन्य जातियों के लोग सतानाम पन्थ में अधिक संख्या में दीक्षित न होते तो रायपुर जिले में सतनामियों की संख्या इतनी अधिक कभी न होती।'

ब्राह्मण क्षत्री बनिया शूद्र चारों बरन के लोग
सब बनिन सतनामी टोरिन भेद भरम के रोग
घांसीदास गुरू बाबा पन्थ ला चलाइन गा।
गोड़ कंवर कोरी घासी चमरा महरा मोची
राउत अऊ रोहिदास तेली सतनाम ळल सोचिन खुल गे हृदय के कपाट गा।।

सन् **1842** में सतनाम पन्थ का सबसे चमत्कारिक घटना तेलासी में हुआ। यहॉ के विभिन्न जातियों में विभाजित समूची जनता ने पूरे गांव के गांव अपने आप को गुरू के सामने समर्पित कर सतनामी घोषित कर दिया। बाद में सतनाम पन्थ में कुर्मी तेळी गोंड़ अहीर रावत बैगा सोनार लोधी आदि का समावेश होता गया। इस प्रकार सतनाम पन्थ ने न केवल असवर्णो के लिए द्वार खोले अपितु सवर्णो ने भी सतनाम की दीक्षा ली। गुरू घांसीदास की अगुआई में समता, सम्मान और भाईचारा के आधार पर जातिविहीन एक नए समाज की रचना हुई। सतनामियों में मिलने वाले अनेक गोत्र नाम जैसे चतुर्वेदानी (चतुर्वेदी), जोगी, पात्रे (पाणिग्रही), कश्यप, भारद्वाज, भतपहरी, बघेल, कुर्रे , जांगड़े, राउत, अनुरागी, तारण, खूंटे आदि सवर्णो से मिलते जुलते गोत्र हैं। सन् **1860** को चटुआभौना में सवर्णो द्वारा यदि गुरू बालकदास की हत्या का षडयंत्र नहीं रचा गया होता तो सम्पूर्ण छत्तीसगढ़ जातिविहीन समाज बन गया होता। हमेशा के लिए अन्तर्कलह और जाति द्वेष का खतरा इस क्षेत्र से टल गया होता।

आर्थिक आन्दोलन ः

गुरू घांसीदास के अनुसार न्यायपूर्वक धन उपार्जन करना श्रेष्ट कार्य है। किसी भी जीव को जवरदस्ती कष्ट पहुचाये बिना तथा अन्य जीवकोपार्जन तरीकों से धन पैदा करना सही बताया। खेती का कार्य सभी कार्यो से उत्तम माना। 'उत्तम खेती, मध्यम राज, लघुतम नौकरी और नीचतम व्यापार' कहावत आज भी छत्तीसगढ़ में प्रचलित है। बैलों को खेत जोतते समय उसके स्वास्थ्य और आहार दोनों का ख्याल रखना जरूरी बताया। इसलिए दोपहर के बाद हल जोतना मना किया है। भारतवर्ष के सभी आन्दोलन में सबसे अधिक प्रभावशाली व रोचक गुरू घांसीदास के आन्दोलन को माना जाता है। वैसे तो प्रथम दृष्टया शोषण का मुख्य कारण धन और धरती दोनों माना गया है लेकिन भारत जैसे कृषि प्रधान देश में समाज का सर्वाधिक शोषण का जरिया जमीन है। उद्योग धन्धे में जो शोषण होता है उससे कहीं ज्यादा शोषण व उत्पीड़न कृषि कार्य में होता है। इसमें निम्नतम मजदूरी के अलावा शरीरिक शोषण भी सर्वाधिक होता है। सवर्णो ने सबसे पहले जमीन पर कब्जा किया। शूद्रों को धन और धरती दोनों से दूर रखा गया। मनु के काले कानून इस बात का स्पष्ट सबूत है।

वैदिक नियमों के अनुसार सवर्णो को शरीरिक मेहनत करना, कृषि आदि को निषिद्ध कार्य बताया है। लेकिन जमीन पर कब्जा करना उनका अधिकार बताया है। बिना खेती किये जमीन से उत्पन्न बढ़िया अनाज खाने, मुफ्त का बढ़िया कपड़ा पहनने में सवर्णो को कोई बुराई नजर नहीं आती। सवर्ण उसे पाप नहीं मानते लेकिन हल जोतना, कपड़ा बुनना, या अन्य शारीरिक मेहनत करना पाप समझते हैं। अमरबेल की तरह दूसरो के मेहनत पर मुफ्त में बैठे बैठे खाना इन्हें अच्छा लगता है।

यदि कर्म के अधार पर जाति बनी है जैसा ये गीता में प्रचारित करते है तो उसके अनुसार मुफ्तखोर को निम्नतम श्रेणी में रखा जाना चाहिए। भारत ही एक ऐसा देश है, जहॉ मुफ्तखोर ऊॅचा वर्ग कहलाता है। वहीं यह देश का दुर्भाग्य है कि मेहनत कश वर्ग निम्नतम श्रेणी माना जाता है। इनके

कथनी और करनी के अन्तर को सतनाम आन्दोलन ने पर्दाफास किया। छोटे छोटे कुटीर उद्योग को सतनाम आन्दोलन का अंग बनाना चाहते थे ताकि समाज के आर्थिक स्तर में सुधार हो सके।

बताया जाता है कि छत्तीसगढ़ में ब्राह्मणों के बाद मालगुजारों में सर्वाधिक गांव कंवरों के पास थे। इसके अलावा गोड़ **294** गांवों के मालगुजार थे। राजपुत रींवा क्षेत्र से आये थे। कुछ उड़ीसा से भी आये थे लेकिन ये ज्यादा मालगुजार नहीं थे। बनिया **145** गांवों के मालगुजार थे। वहीं हलबा आदिवासियों के पास **37** गांव था। कुर्मी तेली भी कुछ गांवों के मालगुजार बनाये गये थे लेकिन इनकी संख्या नगण्य थी। ब्राह्मण छत्तीसगढ़ में बाहर से आये थे। इनके पास कोई जमीन नहीं था। इन्होंने भोंसले ब्राह्मण शासक का लाभ उठाकर यहॉ के दलित व पिछड़ी जातियों के जमीन पर जबरदस्ती कब्जा कर मालगुजार बन गये थे।

सतनाम आन्दोलन का इतना प्रभाव पड़ा कि कई गांव के सवर्ण मालगुजार जो जबरदस्ती लोगों को बेदखल किये थे, उनसे मालगुजारी वापस छीन ली गई। सतनामियों ने **362** गांव के मालगुजारी वापस ले ली । इस तरह संगठित सतनाम आन्दोलन ने सामन्ती प्रथा का मुकावला करते हुए, अपनी दासता को कुछ हद तक अन्त करने में कामयाव रहे। गुरू बालकदास की मृत्यु के बाद नेतृत्व के अभाव में सामन्तवाद पुनः हावी हो गया। जहॉ सतनामियों की संख्या कम थी उन गांवों के सतनामियों को चुन चुन कर बेघर किया जाने लगा। उनकी जमीन जायजाद छीन ली गई। सम्पन्न समाज पुनःगरीबी के साये में जीने को मजबूर हुए।

डा. अम्बेडकर **राज्य- समाजवाद** के हिमायती थे। वे चाहते थे कि शोषकों द्वारा समाज के शोषण का उमदा अस्त्र जमीन रहा है। उनके अनुसार जमीन व्यक्तिगत पूंजी का आधार बनने के बजाय राज्य की संपत्ति होनी चाहिए। यदि ऐसा किया गया होता तो आज भारत का नक्शा ही कुछ और होता। इससे औद्योगीकरण को सहायता मिलती। राष्ट्रीय आय में बृद्धि होती। व्यक्तिगत पूजी, समाज में केवल विभेद ही उत्पन्न करती है। पूंजीवाद समाज का कुछ भला नहीं कर सकती। वह किसी न किसी रूप मे मानवीय मूल्यों को चोट ही पहुॅचायेगी जिससे देश का अहित होगा। राज्य-समाजवाद से सीख लेकर पंडित जवाहरलाल नेहरू ने समाजवाद और औद्योगीकरण को ही आगे बढाया है। वर्गीकृत समाजवाद के हितग्राही यथास्थितिवादी -साम्प्रदाायिक ताकतें आज विनिवेश के नाम पर पुनः पूंजी के एकाधिकार की दिशा में आगे बढ़ती हुई नजर आती है। इसमें पुष्यमित्र काल की पुनरावृत्ति नजर आती है। तब मानवतावादी बुद्ध दर्शन को नष्ट करने के लिए, मनु का काला कानून, सुमति भार्गव नामक ब्राह्मण के माध्यम से लागू कराने का प्रयास किया गया था।

मार्क्स के अनुसार "मनुष्य की चेतना उसकी सामाजिक सत्ता को निश्चित नहीं करती वरन् सामाजिक सत्ता ही उसकी चेतना को निश्चित करती है। सामाजिक परिवर्तन का मुख्य आधार मानव की सत्य एवं सामाजिक- न्याय सम्बन्धी चेतना में नहीं वह उत्पादन सम्बन्धों (Production Relations) अर्थात अन्तिम आधार 'आर्थिक सम्बन्धों' में निहित है।" वहीं आर्थिक नियतिवाद

(Economic determination) का सिद्धान्त यह संकेत करता है कि आर्थिक तत्व केवल मानव जीवन को ही नहीं प्रभावित करते वरन् ये मानव संस्कृति को भी नियंत्रित करते हैं। मार्क्स ने यहॉ तक कहा कि ऐतिहासिक परिवर्तनों में आर्थिक तत्वों का मुख्य योगदान है और आर्थिक परिवर्तनों के साथ-साथ मानव- समाज का सम्पूर्ण ढांचा भी बदल जाता है। लोगों के नैतिकता व धर्म भी बदल जाते है। इस तरह आर्थिक व भैतिक शक्तियॉ इतिहास बदलने में काफी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। डा. अम्बेडकर ने इसे आंशिक रूप से सत्य कहा। उनका ऐसा मत है कि भौतिक तत्व केवल साधन मात्र है। साधन का उपयोग मनुष्य के बुद्धि पर निर्भर करता है। मशीनें औजार तो बना सकती है लेकिन *संस्कृति एवं सभ्यता का निर्माण एवं विकास तो मनुष्य के बुद्धि पर निर्भर करता* **है**। साधन का उपयोग मनुष्य कर सकता है लेकिन इसका उल्टा संभव नहीं है। दुनियॉ में जितने विकास हुए है उसके पीछे मानव चेतना का हाथ है।

मार्क्स केवल वर्ग शोषण को महत्व देते है। उनके अनुसार शोषितों को वे सर्वहारा वर्ग मानते है। शोषण करने वाले को शोषक एवं पूंजीपति वर्ग मानते है। इसीलिए उन्होंने निजी सम्पत्ति के अधिकार को समाप्त करना अनिवार्य एवं आवश्यक समझा। उत्पादन का संचित लाभ पूंजीपति वर्ग के हाथ न जाकर इसका लाभ सर्वहारा वर्ग को मिले। भारत देश का सर्वहारा वर्ग, निम्न वर्ण एवं निम्न जाति के बहुसंख्यक समुदाय के लोग हैं। लेकिन भारतवर्ष के लिए वर्ग संघर्ष का सिद्धान्त (Proliterate Dictatorship) उतना उपयुक्त नजर नहीं आता। क्योंकि यहॉ केवल वर्ग भेद ही नही अपितु यहॉ वर्ण और जाति भेद ही, शोषण के प्रमुख अस्त्र है।

मनुवाद के अनुसार पूंजी के विभाजन का मुख्य आधार वर्ण एवं जाति है जो वर्ग संघर्ष को कमजोर बनाता है। यहॉ सवर्ण अमीर और सवर्ण गरीब में वर्ग संघर्ष की स्थिति बनते नहीं देखी गयी। ऐसी स्थिति में सवर्ण गरीब, सर्वहारा वर्ग का साथ देने के बजाय, अकसर सवर्ण अमीर का साथ देता नजर आता है। जाति वर्ग पर हामी होता है। वर्ण एवं जाति व्यवस्था के कारण मानव मूल्यों के आंकलन का आधार पूंजी नहीं अपितु मनु आधारित खड़ी समाज व्यवस्था है।

बाबू जगजीवन राम के पास अरबों की पूजी था, जब वे भारत के उप प्रधानमंत्री थे, तब उनके हाथों सोमनाथ के मन्दिर में मूर्ति स्थापना करवाया गया। लेकिन उस मूर्ति को बाद में गंगाजल से धोकर पवित्र कराया गया क्योंकि वे अछूत जाति से थे। अकबारों में इसकी खबर मुख्य पृष्ट पर कई दिनों तक छाया रहा। अतः जातिवादी खड़ी समाज व्यवस्था के कारण भारत में 'वर्ग संघर्ष का सिद्धान्त' कामयाब नहीं हो पाया। यहॉ **'सामाजिक- आर्थिक आन्दोलन' (Socio- Economic Revolution)** के साथ **'जाति-वर्ग संघर्ष '** का सिद्धान्त (Caste-Class Struggle) ही उपयुक्त नजर आता है। इस संघर्ष का सूत्रपात गौतमबुद्ध के बाद सन्त कबीर, गुरूनानक, गुरू घांसीदास आदि सभी सन्त महापुरूषों ने किया है। बाद में डा. अम्बेडकर ने इसे आगे बढ़ाते हुए **अधिकार युद्ध** की ओर प्रेरित किया।

जय स्तम्भ सतनाम का प्रतीक

गुरू घांसीदास ने अपने आन्दोलन को केवल शाब्दिक आन्दोलन ही नही वरन् सांकेतिक भी बनाया। सतनाम का एक प्रतीक के रूप में "जय स्तम्भ" जिसे छत्तीसगढ़ी में जैतखाम भी कहते हैं। उन्होंने सबसे पहले सोनाखान के राजा को भयानक आपदा व दुख की घड़ी में सलाह दिया था कि वह अपने गांव में जाकर गांव के मुख्य मार्ग के चौरस्ते में बीचों बीच लगाये और सतनाम का आचरण करे, जिससे उनके विपदा का अन्त हो जायेगा। इसमें चार कोने का एक चबूतरे के बीच में 'इक्कीस हाथ लम्बा सराई की लकड़ी का खम्भा' गाड़ने का प्रावधान है। इसके ऊपरी छोर में एक फुट की दूरी पर तीन लोहे का छल्लानुमा गुजर गड़ा होता है। उसमें पांच फुट लम्बे बांस के डंडे में एक सफेद रंग के कपड़े का ध्वजा लगाने को कहा था। उन्होंने राजा को सलाह दिया था कि उस दिन के बाद से किसी भी आम जनता की तौहीन न करे। सबके साथ बराबरी का व्यवहार करे।

उन्होंने इस सतनाम के प्रतीक 'जय स्तम्भ' को समता, स्वतंत्रता, बन्धुत्व और न्याय का प्रतीक बताया है। उसमें श्वेत ध्वजा प्रेम, अहिंसा, करूणा, दया, सहिष्णुता, सहानुभुति और शान्ति का प्रतीक है। तीनों लोहे का छल्लानुमा गुजर 'प्रेम, करूणा और दया' का पतीक है। पांच फूट बांस का डंडा 'पंचशील' को दर्शाता है। गांव के मध्य चौरस्ते में इसे गाड़ने का लक्ष्य यह कि, आते जाते हर व्यक्ति का नजर उस जय स्तम्भ पर पड़े ताकि उसके मन में सत्य के प्रति आचरण की भावना प्रोत्साहित हो। इससे गलत कार्य के लिए मन में अपने आप निरोध उत्पन्न होता है। यह स्तम्भ उनके उपदेश व सन्देश का प्रतीक चिन्ह की तरह हर पल वहॉ से गुजरने वाले व्यक्ति को याद दिलाता है। सत्य के प्रति आचरण करने को प्रोत्साहित करता है। सम्राट अशोक ने भी एक स्तम्भ बनवाकर महामानव बुद्ध के सिद्धान्त एवं उपदेशों को खुदवाया था। इस तरह हर आम आदमी प्रतीक चिन्ह से प्रभावित हो सदाचार की ओर प्रेरित होता है और सतनाम के प्रति उसके मन में श्रद्धा उत्पन्न होती है।

गुरू घांसीदास ने दूसरा **जय स्तम्भ** रतनपुर में लगवाया था। भन्डारपुरी का तीसरा **जय स्तम्भ** गुरू बालकदास ने लगवाया था। आज गांवों में चौराहे के बदले अपने घरों में जय स्तम्भ लगाये जा रहे है। यह प्रथा इतनी विकसित हुई कि एक ही गांव के किसी- किसी घर में एक नही दो- दो '**जय स्तम्भ** ' गड़ा हुआ नजर आयेगा। जाने अनजाने में यह भी एक मूर्ति पूजा की तरह अन्धश्रद्धा का रूप लेता जा रहा है जो हिन्दुओं के आस पास रहने का सतनामियों पर असर है। अज्ञानता और अनजानापन के कारण कुछ लोग उनकी ज्ञान की बातों को अमल करने के बजाय, आज शुद्ध पूजा उपासना करने में लगे है। वे लोग शायद यह आशा करते है कि कोई ऊपरी शक्ति, उनके भक्ति की एवज में उन्हें अवश्य कुछ देगा।

यह भी पढ़ने सुनने को मिलता है कि किसी ब्राह्मण के नेतृत्व में कुछ लोग जय स्तम्भ की प्राण प्रतीष्ठा कराने में लगे है । शायद उन्हें प्राण प्रतीष्ठा का अर्थ नही मालूम होगा ऐसा प्रतीत होता है। मूर्ति को कोई शिल्पी या कुम्हार बनाता है। उसे ब्राह्मण पुरोहित मन्दिर में ला कर स्थापना करने के बाद वेद मन्त्र का उच्चारण कर 'उस परूथर की मूरत में' जान भरने का नाटक करता है। इस प्रकिया को

प्राण प्रतिष्ठा कहते हैं। यदि पत्थर की मूरत में जान भरा जा सकता है तो पुरोहित ब्राह्मण अपने मृत पिता को प्राण प्रतिष्ठ द्वारा जान डालकर जिन्दा क्यों नहीं कर लेता। उस मूर्ति बनाने वाला बेचारा कुम्हार या शिल्पी प्राण प्रतिष्ठा नाटक के बाद उसी मूर्ति को छू नहीं सकता जिसे उसने थूक लगाकर बनाया होता है। जिस मिट्टी या पत्थर को हाथ पैर लगाकर तैयार करता है, उसे मन्दिर में छुने से वह अछूत बन जाता है। "जिस मूरत को तूने बनाया उससे तू क्या मांगे, अपना करम छोड़ के भाग्य के पीछे भागे।छाया पकड़ सका न कोई मृगतृष्णा के आगे मन मारि मन करै विचारी, माया संग न त्यागे।" धन्य हो ऐसी प्राण प्रतिष्ठा को और धन्य हो उसके मानाने वालों को। सतनाम का प्रतीक जय स्तम्भ आत्मबल पैदा करने का एक साधन मात्र है। साधन को स्वामी मान लेना महान भूल है। मूर्ति पूजा इसी भूल का देन है।

इस सतनाम के प्रतीक **जय स्तम्भ** के पीछे गुरू घांसीदास जी का ऐसा सोच था कि हर आने जाने वाला व्यक्ति इस स्तम्भ को देखकर सतनाम के सन्देश को याद करेगा और अपने जीवन में अमल करेगा। जिससे हर पल सतनाम का सन्देश लोगों के कानों में गुन्जता रहे। ताकि प्रेम और भाईचारा में निरन्तर बृद्धि होता रहे। अन्धविश्वास एवं रूढ़िवाद से जनता को छुटकारा मिले और उनके शोषण का अन्त हो।

गुरू घांसीदास के मुख्य सन्देश

गुरू घांसीदास ने ज्ञानात्मक संवेदन पर बल दिया। जीवन में सत्य को न जानने, सतकर्म को व्यवहार में पर्णित न करने तथा आपस में भाईचारा एवं सद्भाव कायम नहीं कर पाने के कारण समाज टुकड़ों में बंटा हुआ है। यदि सतनाम के सिद्धान्तों को ध्यान में रखकर आत्म मंथन करे तो उसे अपनी कमजोरी का एहशास हो जायेगा, जिसे दूर किया जा सकता है। इसमें वह उर्वरक शक्ति है कि जिस प्रकर बंजर जमीन को सही ढंग से जुताई, निदाई, गुड़ाई करके, सही खाद के साथ उसे उपजाऊ बनाया जा सकता है, ठीक उसी प्रकार जीवनसत्य को व्यवहारिक बना कर, सफल जीवन जीते हुए अपने शोषण से निजात पा सकते हैं। इसमें आवश्यकता है तो सिर्फ इतनी, कि हम उनके विचारों को सिंचित करते रहें तथा सही ऊर्जा (विचारों का खाद, पानी देते हुए) विकसित करते रहें। भूत से सबक सीखते हुए वर्तमान और भविष्य के संवंध में चिंतन करना ज्यादा महत्वपूर्ण है। तभी हमारा आनेवाळा कल उज्वल हो सकता है। उनके सिद्धान्तों को जीवन में अमल करना ही सतनाम है, जो दर्शन का आधार है।

गुरू घांसीदास के कुछ जीवन उपयोगी सन्देश इस प्रकार हैं।

1 भाग्य और भगवान दोनों को नहीं मानना और अपने भीतर छिपी शक्ति को जागृत करना।
2 पुनर्जन्म और आत्मा को नित्य नहीं मानना और इन फालतू भटकनों में समय व्यर्थ न करना।
3 मूर्ति पूजा नहीं करना, मन्दिरों में नहीं जाना, जहॉ तुम्हारे आत्मसम्मान को धक्का पहुॅचता है।
4 किसी के साथ ऊॅच-नीच व जाति-पाति का भेद- भाव नहीं करना और न खुद मानना।
5 किसी ग्रन्थ को शास्वत अर्थात स्वतः प्रमाण नहीं मानना, सारे मानव निर्मित है।

6 जीवन प्रवाह को इसी शरीर तक परिमित मानना।
7 खान पान में सादगी रखना, इससे उत्तम विचार उत्पन्न होते हैं। अतः मांस मदिरा सेवन नहीं करना।
8 सत्य की आचरण करते हुए मानव के साथ भाईचारा एवं अन्य प्राणियों से प्रेम भाव रखना।
9 पशुओं के साथ भी प्रेम व्यवहार करो उन्हें दोपहर बाद हल मत जोतो। गायों को हल मत चलाओ ।
10 परायी स्त्री को उम्र के अनुसार मॉ, बहन या बेटी समझो। नारि को समानता का अधिकार दो।
11 रूढ़िवाद से बचना और पूण्य कमाने के लालच में गंगा स्नान व तीरथ नहीं जाना,न ही पिण्डदान करना। आदि

कुछ लोग उनके द्वारा सात ही सन्देश की देने की बात करते है। किसी भी सन्त महापुरूष ने सन्देश की कोई सीमा नही रखी। समाज को जागृत करने के लिए जिस समय जैसी जरूरत पड़ी वैसी सन्देश देते रहे। कुछ स्वार्थी तत्वों ने सत् (**True**) का सात (**Seven)** बनाने में लगे हैं। **'सतनामी'** के बदले **'सातनामी'** बताकर भ्रमित किया जा रहा है। इसीतरह नाग- द्रविड़ सभ्यता को, नागसर्प के साथ बताने का प्रयास किया गया। फलस्वरूप नाग पंचमी को लोगों ने सर्प को दुध पिलाना शुरू कर दिया। 'नाग पंचमी' उन पांच नाग राजाओं, जो आर्यपुत्रों को भारत भूमि में घूसने नहीं दिये, उनकी याद में मनायी जाती थी। शिशुनाग, दिवोनाग, कालिन्दी आदि पांच प्रमुख नागवंशी राजा थे। नाग का अर्थ एक हीरा जवाहरात जैसे नगीने या मूल्यवान ब्यक्ति को कहा जाता था। समाज का अति महत्वपूर्ण ब्यक्ति जैसे प्रमुख या प्रधान होता था वह नाग कहलाता था जो सर्प नहीं था। यह सच है कि नाग द्रविड़ सभ्यता में मनुष्य का सम्वन्ध प्रकृति व प्रणियों से जुड़ा हुआ था। गुरू के केवल सात सन्देश बताना वास्तविकता से परे है साथ ही समाज को दिग्भ्रमित करने का एक वैदिक तरीका है। शादी विवाह आदि के अवसर पर दीपक में सात बाती लगाना नयी रूढ़िवाद है।

वैदिक आर्यो का हमेशा यह तरीका रहा है कि किसी भी क्रान्तिकारी आन्दोलन को - पहले ***रोको,*** यदि नही रोक सके तो उसकी ***दिशा बदल दो***। यदि फिर भी नही रूकता है तो उसके सारे ***सबूत नष्ट कर दो,*** और साथ ही नये नये कहानी बनाते हुए बिल्कुल ***नया सबूत खड़ा कर दो,*** ताकि लोग **गुमराह** हो जायें। इन सबके बावजूद यदि परिवर्तन की धारा नहीं रूक पाती, तो उनके हर कार्य को ***अलौकिक व चमत्कार*** बताते हुए उन्हे ***भगवान*** बनादो। हर असम्भव को सम्भव बतादो। उसका कार्य अपने आप रूक जायेगा। क्योंकि लोग उन महापुरूषों में चमत्कार या अद्भूत शक्ति तलाशने में लग जायेंगे जो सम्भव नहीं है। जब चमत्कार सम्भ्व नहीं हो पायेगा तो आन्दोलन अपने आप समाप्त हो जायेगी अथवा बिखर जायेगी। जिस तरह गर्मी के मौसम में बरसात न होने से नदी की पानी सूख जाती है। उसी तरह विचारधारा के अभाव में परिवर्तन की धारा धीरे- धीरे, रूक जायेगी।

अधिकार युद्ध की ओर सतनाम आन्दोलन

मार्क्स ने सच ही कहा है 'कि यदि आप कुछ भी करते हैं तो केवल आपकी बेड़ियॉ ही टूटेगी, इससे ज्यादा आपका कुछ नुकसान नहीं होता।' सतनाम आन्दोलन किसी जाति या संप्रदाय विशेष का आन्दोलन नही बल्कि यह शोषण व अन्याय- अत्याचार के विरूद्ध एक जन आन्दोलन है, जहॉ केवल

परिवर्तन है। जाति व संप्रदाय हमेशा आपसी वैमनश्यता का शिकार होता है। सांप्रदायिक ताकतों के बक्तिगत स्वार्थ एवं महत्वाकांक्षा के कारण समाज में मानसिक द्वन्द और सामाजिक अवहेलना की स्थिति हमेशा बरकरार रहती है। हर पल जन मानस में तनाव व्याप्त रहता है। तब मनुष्य अपने विकास के बदले सुरक्षा को महत्वपूर्ण समझने लगता है जिसे जंगल राज भी कहते हैं।

बुद्ध के सत्य और अहिंसा आन्दोलन से समाज में वैचारिक क्रान्ति का उद्भव हुआ और सम्पूर्ण भारत के अलावा अन्य देशों में तेजी से फैला। सन्त कबीर के सतनाम आन्दोलन से अन्धविश्वास और रूढ़िवाद का बन्धन ढीला हुआ, फलस्वरूप जातिभेद कुछ नरम हुआ और 'मूक समाज' को जुबान मिली। लेकिन गुरूनानक के सतनाम आन्दोलन ने, न केवल अन्धविश्वास के साथ जातिवाद को कुछ हद तक नष्ट किया बल्कि लोगों को मेहनत के साथ जीने का रास्ता बताया। जरूरत पड़ने पर अपने अधिकार एवं आत्मरक्षा के लिए अस्त्र उठाने को भी उचित करार दिया, जिससे समाज में एक नये नेतृत्व का उभार आया।

गुरू घांसीदास के सतनाम आन्दोलन ने ब्राह्मणवाद को नेस्तानबूद किया। समाज में आत्म-सम्मान की भावना को सुदृढ़ किया। शोषण व अन्याय- अत्याचार के विरूद्ध संघर्ष के लिए अद्भुत शक्ति प्रदान किया। फलस्वरूप जाति विहीन समाज 'सतनाम पन्थ' की स्थापना हुई। उनके आन्दोलन के असर स्पष्ट संकेत देता है कि एक मनुवादी ब्राह्मण लेखक हीरालाल शुक्ल को अपना दर्द 'विपर्यास की स्थिति' कहते हुए यह लिखना पड़ा कि *"दलितों ने अपने आपको ब्राह्मण घोषित कर दिया और ब्राह्मणों को अस्पृश्य माना।"* ब्राह्मणवादी व्यवस्था का हितग्राही वर्ग द्वारा, इस समाज को विघटित करने की निरन्तर कोशिस जारी है, जिसे हम '**प्रतिक्रान्ति और प्रभाव**' विषय के अन्तर्गत विस्तार से चर्चा करेंगे। इस आन्दोलन में भाग लेने वालों को, आज भले ही एक जाति का दर्जा दे दिया गया है, लेकिन अभी भी यह आन्दोलन थमा नहीं है, चिन्गारी भीतर ही भीतर, आग की तरह सुलग रही है। इसमें कोई दो मत नहीं कि सही नेतृत्व मिलने पर आन्दोलन फिर से उठ खड़ी होगी। ज्वालामुखी बनकर कभी भी फूट पड़ेगा।

"एक चिन्गारी उठती है तो शोले बन जाते है ।
जब धुआँ उड़ता है तो राख बन जाती है।।"
और गालिब की वो गजल याद आती है
"मिटादे खाक में हस्ती अगर कुछ मर्तबा चाहे।
कि दाना खाक में मिलकर गुले गुलजार होता है।।"

सतनाम आन्दोलन का कार्यकाल सन् **1820** से **1830** तक बताया जाता है। सन् **1830** से **1850** के बीच के **20** वर्ष के लम्बे अन्तराल में इस आन्दोलन की क्या रूप रेखा थी, इस पर लोग चुप्पी साधे नजर आते है। वास्तव में इस दौरान वे समाज को व्यवथित करनें में अपना ज्यादा समय लगाये। विभिन्न समुदाय के लोग इस आन्दोलन में जुड़ने लगे थे। उन सभी को आत्मसात करना और मानवता पर आधारित नयी व्यवस्था का निर्माण करना सतनाम आन्दोलन के विकास के लिए अत्यंत

आावश्यक था। इस आन्दोलन को लगातार आगे बढ़ाने के लिए उचित नेतृत्व पैदा करना व उभारना उनका दूसरा मुख्य लक्ष्य था। अतः तत्कालिन परिस्थिति को समझते हुए, उन्होंने अपने पुत्र बालकदास को, अपने देख रेख में आगे बढ़ाया। बाद में वही गुरू बालकदास कहलाये जिन्होंने सतनाम आन्दोळन को तेज गति प्रदान की। सन् **1825** में अंग्रेजों ने शिक्षा के क्षेत्र में मनु के काले कानून को समाप्त करते हुए, पहले बार शिक्षा का द्वार शूद्रों- अतिशूद्रों के लिए खोला।

गुरू बालकदास ने सतनाम आन्दोलन को गति प्रदान करने के लिए अपने मित्र वीरनारायनसिंह की मदद ली। दोनों क्रान्तिकारी मिलकर **1850** के बाद सतनाम आन्दोलन को आगे बढ़ाये। उसी काल में सन् **1848** में वर्तमान महाराष्ट्र के पूना शहर में माली समाज में पैदा हुए ज्योतिराव फूले को, ब्राह्मणों के बारात में केवल साथ चलने पर उन्हें धक्का देकर बेइज्जत किया था, जो बाद में महान क्रान्तिकारी हुए। इन्होंने ब्राह्मणवाद के खिलाफ खुला युद्ध घोषित किया। अंग्रेजो के शासनकाल में गुलामगिरी नामक किताव लिखकर देश की गुलामी का कारण सेठ जी भठ जी कहा। मनु के कानून को तोड़ते हुए ब्राह्मणवाद के खिलाफ समाज को आन्दोल्ति किया। जब शूद्रों में पुरूषों को पढ़ने का अधिकार नहीं था, ऐसे समय नारि शिक्षा को आगे बढ़ाते हुए सन् **1873** में 'सतनाम पन्थ' की तरह 'सत्य शोधक समाज' की स्थापना की। शूद्रों व अतिरशूद्रों को मान सम्मान के साथ जीने का रास्ता बताकर महात्मा ज्योतिबा फूले कहलाये। इस तरह देश भर में जगह जगह ब्राह्मणवाद का विरोध होने लगा।

देश भर में इस सामाजिक कुव्यवस्था से मुक्ति पाने की रास्ता ढूढ़ने के काम में तेजी आने लगी। सन्त महापुरूषों की विचारक्रान्ति का असर अन्दर ही अन्दर दावानल की तरह फैलते जा रहा था। महात्मा ज्योतिबाफूले, छत्रपति साहू जी महाराज, पेरियर रामास्वामी नायकर और डा. अम्बेडकर के, बाद के प्रयासों ने इस आन्दोलन में चार चांद लगा दिया। डा. अम्बेडकर ने समाज को 'अधिकार युद्ध' की ओर अग्रसित करते हुए, साहित्य की कमी को काफी हद तक पूरा करने की प्रयास किया। समाज 'अधिकार युद्ध' की ओर तेजी अग्रसर हो रहा है। उन्होंने कहा कि *"किसी भी तरह जीने में कोई श्रेय नहीं यदि श्रेय है तो जीने के स्तर का। कोई डरपोक की तरह सर झुकाकर केवल अपने लिए जीता है तो कोई कितने भी मुशीबतों को झेलते हुए संघर्ष के साथ अपना सर उठा कर जीता है।"*

ः सतनाम आन्दोलन एक कठिन मोड़ पर ः

सन् **1850** (इन्टरनेट के एक साइट पर **1836** दर्शाया गया है) में गुरू घांसीदास निर्वाण प्राप्त हुये। तद् उपरान्त अधूरे कार्य को पैरा करने का बीड़ा गुरू बालकदास ने उठाया। लेकिन सन् **1860** में सवर्णो द्वारा गुरू बालकदास के निर्मम हत्या के बाद, उचित नेतृत्व के अभाव में यह आन्दोलन लड़खड़ा सा गया। उनके अप्रत्यासित हत्या से सतनाम पन्थ के अनुयायिों को गहरा धक्का लगा। गुरू अमरदास ने भी इस आन्दोलन पुनर्जीवित करने का प्रयास किया। उन्हें अच्छा जन समर्थन भी मिला। लेकिन इन सबके बावजूद जुझारूपन के अभाव में वह गति नहीं पकड़ पाया, जो गुरू बालकदास के समय था।

ज्योतिबाफूले देश भर में चल रहे सतनाम आन्दोलन को आगे बढ़ा सकते थे और 'सत्य शोधक आन्दोलन' को इसमें समाहित हो जाना चाहिए था। लेकिन जानकारी के अभाव में सम्बन्ध नहीं स्थापित हो पाया। ज्योतिबा फूले का आन्दोलन भी राष्ट्रव्यापी आन्दोलन नहीं बन पाया। प्रचार प्रसार के अभाव में सारे आन्दोलन केवल क्षेत्रीय बन कर रह गये। उसी बीच सन् **1885** में देश की आजदी के नाम पर तिलक के नेतृत्व में राष्ट्रीय नेशनल कांग्रेस की स्थापना हुई। तिलक राज काज में हिस्सादारी चाहते थे। लेकिन ज्योतिबाफूले देश की सम्पूर्ण आजादी कि हिमायती थे। तिलक ब्राह्मण होने के कारण सुविधापरस्त थे। इनके पास प्रचार प्रसार की सुविधायें थी, अतः इनका विस्तार तेजी से हुआ। इस बीच सन् **1916** के बाद डा. अम्बेडकर ने भी अछूतों के हित की लड़ाई छेड़ दी। लेकिन तब भी सतनाम आन्दोलन से उनका कोई सीधा सम्बन्ध नही स्थापित हो पाया। बहुत बाद में श्री नकुळ ढेढ़ी ने डा. अम्बेडकर से सम्पर्क स्थापित करने का प्रयास किया। गुरू घांसीदास के जयंती मनाने के पीछे डा.अम्बेडकर के सलाह पर श्री नकुल ढेढ़ी जी का हाथ है। अब तक काफी विलम्ब हो चुका था। सतनाम आन्दोलन कुछ चापलूस ब्राह्मणों के शिकंजे में जकड़ने लगा था। सतनाम आन्दोलन के मुख्यधारा से हटकर राजमहन्त नैनदास जी, गो रक्षा अभियान में लग गये। असली लड़ाई समझ न सके और समाज वही की वहीं रह गया।

सन् **1919** में प्रथम इंडिया एक्ट बना जिसमें 'दलितों के हित' में कुछ करने का फैसला लिया गया। इस बीच सन् **1920** में तिलक की मृत्योपरान्त सन् **1924** के बाद इंडियन नेशनल कांग्रेस का नेतृत्व गांधी के हाथों आया। अब तक आजादी की बात शुरू हो गई थी। तब पेरियर रामास्वामी नायकर कांग्रेस के उपाध्यक्ष थे। पेरियर चाहते थे कि आजादी की लड़ाई के पहले दलितो की हिस्सादारी तय हो जाये। क्योंकि आर्यपुत्रों पर उनका कतई विश्वास नहीं था। अतः श्री गांधी द्वारा पेरियर रामास्वामी के पिछड़े दलितों के हिस्सादारी के प्रस्ताव को नहीं मानने के कारण वे कांग्रेस से अलग हो गये। द्रविड़ कड्गम (DK) नामक समाजिक संगठन बनाकर भारत के मूलनिवासियों को संगठित करने लग गये, जो दक्षिण भारत में काफी कामयाब रहा। छत्तीसगढ़ में सन् **1925** में अखिल भारतीय सतनामी महासभा की स्थापना हुई, जिसका मुख्यालय रायपुर में रखा गया । श्री अगमदास जी इसके संरक्षक तथा रतीराम राजमहन्त जी को अध्यक्ष बनाया गया। प्रारंभिक स्तर में इस संगठन का मुख्य लक्ष्य क्षेत्र के सतनामियों को संगठित करना और गुरू घांसीदास व बालकदास के सतनाम आन्दोलन को आगे बढ़ाना था। लेकिन बाद में यह सामाजिक आन्दोलन राजनीति के गलियारों इसने भी दम तोड़ दिया।

सन् **1931** में द्वितीय गोल मेज परिषद में डा. अम्बेडकर के नेतृत्व में जब अछूतों को दो मत का अधिकार मिला तो गांधी जी सहित सारे सवर्ण बौखला उठे। उन्हें अछूतों को अधिकार मिलना बर्दाश्त नहीं हुआ। अछूतों के इस अधिकार के विरूद्ध, पूना के एलवेड़ा जेल में ही गांधी जी द्वारा सवर्णो के हित में आमरण अनशन कर दिया गया। बाद में डा. अम्बेडकर को मजबूर होकर **24** सितम्बर **1932** को "पूना समझौता" (Poona Pact) करना पड़ा। एक बार फिर एकलव्य का अंगूठा सवर्णो ने काट लिया गया। डा.अम्बेडकर के उभरते नेतृत्व से गांधी जी घबराकर, लोहा से

लोहा काटने का तरीका अपनाकर बाबा साहब के विरोध में कांग्रेस की ओर से बाबू जगजीवनराम जी को उतारा गया। बापू ने छत्तीसगढ़ में बाबू जी को लगा दिया। कुछ अगुआ सतनामी लोग, अपने क्षणिक लाभ के लिए, बाबा के स्वाभिमान आन्दोलन के बदले, बाबू जी के साथ हो बापू जी के चमचागिरी के चक्कर में फंस गये। इंडियन नेशनल कांग्रेस आजादी की लड़ाई के लिये बनायी गयी थी, राजनीतिक पार्टी मे तबदील हो गई। उसका मूल स्वरूप ही बदल गया। अनजाने में आम जनता गुमराह हो गई। कोई भी राजनीतिक दल कभी भी समाज का भला नहीं कर सकती। वे समाज को केवल एक पदार्थ या तत्व समझते है। उस तत्व का वे अपने हित में केवल इस्तेमाल करते है। इस तरह सारा दलित शोषित समाज आज शोषक वर्ग के राजनीतिक इस्तेमाल की वस्तु बन गयी है।

सतनाम आन्दोलन से जुड़े लोग बाद के परिवर्तन से अनभिज्ञ रहे हैं। वे ढर्राशाही का शिकार हो मूल आन्दोलन सामाजिक- चेतना के बदले राजनीति के शिकार हो गये है। गुरू घांसीदास जी का शुद्ध सामाजिक चेतना आन्दोलन, राजनीति के गलियारों में भटक गया है। क्रान्ति के दोधरी तलवार की धार भोथी पड़ गयी। समाज को राजनीति पर हावी होना था। लेकिन आज समाज में राजनीति इस तरह हावी हो गया है कि कोई भी व्यक्ति राजनीतिक विभाजन से अछूता नजर नहीं आता है। मूल आन्दोलन केवल भावनाओं तक सीमित रह गया है। आज समाज इस कठिन मोड़ पर खड़ा नजर आता है। समाज का बहुसंख्यक भूमिहीन मजदूर किसान, गरीबी, भुखमरी, बेरोजगारी, शोषण, अन्याय- अत्याचार का शिकार हो, बड़े पैमाने पर छत्तीसगढ़ से पलायित है। अपने घर से बेघर, शहरों में सड़कों किनारे गन्दे नाले के ऊपर, खुले आसमान के नीचे, शर्दी, गरमी, बरसात में अपना जीवन बसर करने में मजबूर हैं। भला हो ऐसे समाज का, जहॉ एक व्यक्ति भूखों मरे तथा दूसरा व्यक्ति सुख- चैन की नींद सोता रहे। एक व्यक्ति भूखा और एक व्यक्ति सूखा, फिर भी दोनों एक दूसरे को अपना कहते रहें, यह विरोधाभास कैसे चलेगा ? आज गुरू घांसीदास जी के सतनाम- आन्दोलन का अस्तित्व खतरे में नजर आता है। यदि अपने अस्तित्व की रक्षा करना है तो क्षणिक लाभ एवं राजनीति से ऊपर ऊठ कर, यहॉ से आगे का रास्ता ढूढ़ना अब केवल बुद्धिजीवी वर्ग का काम रह गया है। यही सतनाम आन्दोलन और क्रान्तिपथ है।